Chap-4

चतुर्थ अध्याय

महानगरीय परिवेश में कामकाजी महिलाओं की समस्याएँ

:: चतुर्थ अध्याय ::

: महानगरीय परिवेश में कामकाजी महिलाओं की समस्याएं :

प्रास्ताविक :

नगरीकरण , महानगरीकरण और औद्योगीकरण के कारण सामाजिक स्थितियों और उसके समीकरणों तथा मूल्यों में तीव्रगामी परिवर्तन परिलक्षित हो रहे हैं । मध्ययुगीन सामंतवादी मूल्यों के तहत नारी का कार्य-क्षेत्र केवल घर की चहारदिवारी तक सीमित था , परंतु अब नारी शिक्षा का प्रचार-प्रसार होने से वह भी पढ़-लिखकर अनेक क्षेत्रों में कार्यरत हो रही है । यद्यपि देखा जाय तो स्त्री प्रातः से रात तक किसी-न-किसी प्रकार के कार्य में रत रहती है , परंतु उसके इस कार्य को कार्य नहीं समझा जाता । कार्य की अवधारणा ही कुछ अलग है । उसके साथ आर्थिक पक्ष जुड़ा हुआ है । यद्यपि सारे घरेलू काम भी मेहनत मांगते हैं । घर की सफाई करना ,

झाड़ू-पोंछा करना , कपड़े धोना , पानी भरना , बरतन मांजना, बच्चे पालना ये सब काम ही हैं ; बल्कि बड़े सरपच्ची के काम हैं । परंतु कोई महिला ये सब काम अपने यहां करें तो उसके लिए उसे पैसे नहीं दिये जाते हैं , जबकि ऐसे ही काम वह अन्यत्र करती है तो उसे पैसे मिलते हैं । प्रस्तुत अध्याय में हम महानगरीय परिवेश में बाहर काम करने वाली अब महिलाओं की स्थिति पर विचार करने जा रहे हैं ।

कामकाजी महिलाओं की अवधारणा :

कामकाजी महिलाओं की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए सर्वप्रथम "कामकाजी" शब्द को समझना होगा । "कामकाजी" शब्द "कामकाज" में "ई" प्रत्यय जोड़ने से बना है । "कामकाज" में दो शब्द हैं — काम और काज । "काम" शब्द संस्कृत के "कर्म" तथा "काज" शब्द संस्कृत के "कार्य" से व्युत्पन्न हुआ है । "काम" के अर्थ पर बल देने के लिए यहां एक अर्थ के दो शब्दों का प्रयोग किया गया है । इस प्रकार तो प्रत्येक कार्य करने वाले व्यक्ति को "कामकाजी" कहा जाना चाहिए । परन्तु हम पुरुष के आगे कामकाजी पुरुष " ऐसा विशेषण नहीं लगाते , क्योंकि पुरुष तो आदि-अनादि काल से कामकाजी है ही , अतः उसके आगे ऐसा विशेषण लगाने की आवश्यकता नहीं रहती ।

वस्तुतः देखा जाय तो एक घरेलू औरत प्रातः काल से लेकर रात तक किसी-न-किसी काम में लगी ही रहती है । केवल सोने के समय को छोड़कर उसका सारा समय घरेलू कामों की व्यस्तता में ही जाता है , परंतु विडंबना यह है अपना दो तिहाई समय व्यस्त रहने वाली यह "अति व्यस्त कामकाजी " महिला कामकाजी

नहीं मानी जाती । ऐसा इसलिए है कि औरत जो कार्य करती है, प्रत्यक्षतः उससे कोई आमदनी होती हो ऐसा प्रतीत नहीं होता । पुरुष जो कार्य करता है उससे आमदनी होती है, स्त्री उस आमदनी से घर चलाती है । अतः पुरुष की तुलना में अधिक कार्य करते हुए भी उसके कार्य को उतना महत्व नहीं दिया जाता । कुछ जातियों में तो पुरुष के लिए "कमेरा" शब्द प्रचलित है । पुरुषों के खानपान पर विशेष ध्यान दिया जाता है, क्योंकि वह कमाता है । इस प्रकार अधिक कार्य करते हुए भी स्त्री आर्थिक दृष्टया पुरुष पर निर्भर रहती है । अतः मार्क्स की दृष्टि में नारी की हीनावस्था का कारण आर्थिक दृष्टि से पुरुष पर उसकी निर्भरता है । एलिस बोल्डिंग ने मार्क्स के इस अभिमत का अधिक विश्लेषण करते हुए कहा कि आम स्त्री पुरुष जितना ही श्रम करती है । लेकिन आंकड़ों में उसके श्रम को स्वतंत्र रूप से एक व्यक्ति द्वारा किया गया श्रम नहीं माना जाता, बल्कि उसे पति के कार्य में हाथ बंटा देने की संज्ञा दी जाती है । कहने का आशय यह है कि नारी के श्रम को पुरुष से अलग करके नहीं देखा जाता । अतः उसका श्रम अदृश्य (Invissible) बनकर रह जाता है ।

कामकाजी महिलाओं के संदर्भ में एक भ्रान्त अवधारणा यह है कि उसे बौद्धिक सफेदपोश (White coloured) नौकरियों का पर्याय माना गया है । फलतः दफ्तरों, अस्पतालों, विद्यालयों आदि में कार्यरत सुशिक्षित अथवा अर्धशिक्षित महिलाओं को ही कामकाजी महिला कहा जाता है । इस रूढ़ सामाजिक मान्यता के कारण ही डा. अनिल गोयल दफ्तरों में नौकरी करने वाली शिक्षित महिलाओं को ही कामकाजी मानते हैं ।[2] डा. अवधेशचन्द्र गुप्त का मत भी कुछ इसी आशय को व्यक्त करता है । यथा - "प्रशासनिक कार्यों में शिक्षित और अर्द्धशिक्षित नारियां कार्य करती हैं जिन्हें कामकाजी महिलाएं कहा जाता है और पारिवारिक कार्य करने

वाली नारियों को दासी अथवा सेविका कहा जाता है ।"[3]

इन दोनों परिभाषाओं पर विचार करने से उनकी अपूर्णता ज्ञात होती है । डा. गोयल शिक्षा और बौद्धिक प्रतिभा के बल पर काम करने वाली महिलाओं को ही "कामकाजी की संज्ञा देते हैं, तो फिर खेतों, कारखानों, दुकानों और दूसरों के घरों में जाकर काम करने वाली महिलाओं को क्या "कामकाजी" नहीं कहा जायेगा ? उन्हें "दासी " अथवा "सेविका" कहकर "कामकाजी" संज्ञा से खारिज करना उचित न होगा ।

अंग्रेजी में "कामकाजी" के पर्याय के रूप में "वर्किंग" शब्द मिलता है । वहाँ उसे "वर्किंग वुमन" कहते हैं । महानगरों में उनके रहने के लिए " वर्किंग वुमन हास्टेल " भी होते हैं । "टेरा-कोटा " उपन्यास की मिति गुरु में ऐसे हास्टेल में ही रहती है । यहाँ वर्किंग के मूल में "वर्क" शब्द है जिसका अर्थ होगा बौद्धिक या शारीरिक श्रम के द्वारा जीविकोपार्जन के लिए किया जाने वाला काम । अतः कहा जा सकता है कि "कामकाजी" उस महिला को कहा जायेगा जो अर्थोपार्जन हेतु बौद्धिक या शारीरिक श्रम करती है । श्रम तो गृहिणी भी करती है, परन्तु उसका भुगतान रुपये-पैसे में नहीं होता । उससे घर की आमदनी में इजाफा नहीं होता । अतः जोसेफ मिनाहुर के इस अभिमत से सहमत हो सकते हैं कि अर्थोपार्जन करने वाली स्त्रियों को "कामकाजी" संज्ञा दे सकते हैं ।[4]

यहाँ एक बात तो स्पष्टतया उभरती है कि अर्थोपार्जन ही "कामकाजी" महिला होने की एक बुनियादी शर्त है । किन्तु यह प्रथम और अंतिम शर्त नहीं है । यह अर्थोपार्जन किस प्रकार हो रहा है, इस मुद्दे को भी ध्यान में रखना होगा । कोई महिला यदि गलत तरीकों से धनोपार्जन करती है तो उसे "कामकाजी"

नहीं कहा जा सकता । उसके द्वारा संपादित श्रम उत्पादक होना चाहिए । समाज या राष्ट्र के हित में होना चाहिए । सरल शब्दों में कहें तो राज्य और समाज द्वारा अनुमोदित होना चाहिए । इस दृष्टि से देखा जाय तो वेश्याओं, जालसाजी, डाकू-तस्करी में संलग्न महिलाओं आदि को "कामकाजी" महिला की संज्ञा नहीं दे सकते ।

यहाँ एक और मुद्दा भी गौरतलब होगा । यह आवश्यक नहीं कि अर्थोपार्जन के लिए नारी को घर से बाहर ही जाकर काम करना होगा । घर में रहकर भी कोई महिला अर्थोपार्जन का कार्य कर सकती है, जैसे टेलरिंग का काम, स्वेटर आदि बुनना, किसी अध्यापिका, गायिका या नृत्यांगना द्वारा अपने घर के ही किसी कक्ष में विद्यार्थियों को शिक्षा देना, किसी महिला डाक्टर द्वारा अपने घर के कक्ष ही किसी कक्ष या कोने में क्लीनिक खोलना आदि आदि । कहने का अभिप्राय यह कि महिला अपने घर में ही रहकर ऐसा कोई उत्पादक कार्य करती है तो उसे भी कामकाजी ही कहा जायेगा । यहाँ एक तथ्य ध्यातव्य है कि स्वेटर बुनने का काम या कपड़े सीने का काम दूसरों के लिए होना चाहिए । व्यवसाय के धरातल पर होना चाहिए । यदि कोई महिला अपने घर-परिवार वालों के कपड़े सिलती है या स्वेटर बुनती है तो उससे पैसों की बचत तो होती है, पर उससे नयी आमदनी नहीं होती । अतः ऐसी महिला को कामकाजी नहीं मान सकते ।

महानगरीय जीवन के एक और पहलू पर भी यहाँ गौर करना होगा । महानगरों में कई पुरुष सरकारी, अर्ध-सरकारी नौकरी करते हैं । सर्विस के कानूनों के कारण वे उस नौकरी के अलावा कोई दूसरा उत्पादक काम नहीं कर सकते । ऐसे लोग कानून से बचने के लिए अपनी पत्नी, बहन या माँ के

नाम से कारोबार शुरू करते हैं । ऐसी स्थिति में वास्तविक काम तो वे पुरुष ही करते हैं , महिलाएं तो केवल जरूरी कागजातों पर या चेकों पर हस्ताक्षर ही करती हैं । अतः इन महिलाओं का शुमार भी कामकाजी महिलाओं में नहीं हो सकता ।

उपर्युक्त विवेचन-विश्लेषण के आधार पर अब "कामकाजी" महिला की अवधारणा के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों को निष्कर्ष रूप में रख सकते हैं :—

(1) गृहकार्य से इतर अर्थोपार्जन हेतु कार्य करने वाली महिला को कामकाजी महिला कह सकते हैं ।

(2) ऐसा कार्य कुशल या अकुशल क्षेत्र में आ सकता है । दूसरे शब्दों में कहें तो ऐसा श्रम बौद्धिक भी हो सकता है और शारीरिक भी । बौद्धिक श्रम में शारीरिक श्रम बिल्कुल नहीं होता ऐसा भी नहीं है । वस्तुतः दोनों में मात्राभेद का ही अंतर है ।

(3) सुशिक्षित , शिक्षित और अर्ध-शिक्षित महिलाएं प्रायः बौद्धिक श्रम में संलग्न पाई जाती हैं ।

(4) अशिक्षित महलाऍ××× महिलाएं प्रायः शारीरिक प्रकार का श्रम करती हैं । कुछ कारखानों में काम करने वाली महिलाएं अर्ध-शिक्षित प्रकार की भी पाई जाती हैं ।

(5) कार्य के प्रकार या पद के आधार पर इन कामकाजी महिलाओं का श्रेणी-विभाजन किया जा सकता है ।

(6) समाज द्वारा वर्जित क्षेत्रों में काम करने वाली महिलाओं को कामकाजी की श्रेणी में नहीं रख सकते ।

(7) कोई महिला अपने घर में रहकर भी अर्थोपार्जन का कार्य कर सकती है । ऐसी स्थिति में उसे कामकाजी महिला ही कहा जायेगा ।

कामकाजी महिलाओं का श्रेणी-विभाजन :

उपर्युक्त विवेचन में स्पष्ट किया गया है कि कार्य के प्रकार, उसके स्तर तथा पद के आधार पर कामकाजी महिलाओं को श्रेणीबद्ध किया जा सकता है। मोटे तौर पर हम इनको तीन वर्गों या श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकते हैं : उच्चवर्ग या प्रथम वर्ग ; मध्यवर्ग या द्वितीय वर्ग तथा निम्नवर्ग या तृतीय वर्ग। कामकाजी महिलाओं की ये श्रेणियां ग्राम, कस्बा, नगर तथा महानगर सभी स्थानों पर पायी जाती हैं ; किन्तु यहां हमारे प्रबंध की सीमा के कारण हम अपनी चर्चा केवल महानगर की कामकाजी महिलाओं तक सीमित रखेंगे। निम्नवर्ग में भी निम्नवर्ग और अति-निम्नवर्ग ऐसी दो श्रेणियां हो सकती हैं।

कामकाजी महिलाओं का उच्चवर्ग :

परिवर्तित सामाजिक स्थितियों में अब नगरों तथा महानगरों में मध्यवर्ग तथा उच्चवर्ग में लड़कियों को पढ़-लिखकर आगे बढ़ने की तमाम सुविधाएं हैं। नारी-शिक्षा का निरंतर प्रचार-प्रसार हो रहा है और जीवन के तमाम क्षेत्रों में नारी आगे बढ़ रही है। यहां तक कि जो क्षेत्र अब तक नारियों के लिए वर्जित माने जाते थे, उनमें भी साहस और बहादुरी तथा दिलेरी के साथ वे प्रविष्ट हो रही हैं। राष्ट्रीय स्तर पर किरण बेदी उसका एक ज्वलंत उदाहरण है। बड़ौदा की डेप्युटी पुलिस-कमिश्नर श्रीमती मीरा रामनिवास भी इस श्रेणी में आती हैं। राजनीति के क्षेत्र में भी महिलाएं आगे आ रही हैं। आंतरराष्ट्रीय स्तर पर श्रीमती इन्दिरा गांधी, श्रीमती मार्गरेट थेचर, श्रीमती चन्द्रिका रणतुंगे, श्रीमती भण्डारनायक आदि इसके उदाहरण हैं ; तो

राष्ट्रीय स्तर पर सुश्री जयललिता, सुश्री ममता बेनर्जी, श्रीमती राबड़ीदेवी, श्रीमती सुषमा स्वराज आदि के नाम उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं। बड़ौदा की सांसद श्रीमती जयाबेन ठक्कर है। गुजरात की वर्तमान शिक्षा-मंत्री भी एक महिला है – श्रीमती आनंदीबेन पटेल। श्रीमती आशारानी व्होरा ने भारत की अग्रणी महिलाओं को लेकर एक स्वतंत्र शोध-कार्य किया है और वह प्रकाशित भी हुआ है।[5] उसमें उन्होंने जीवन के विविध क्षेत्रों में पहल करने वाली भारतीय महिलाओं के संदर्भ में लिखा है। पृष्ठभूमि के रूप में उनके निम्न-विचार चिंतनीय हैं —

"दूसरों की बनाई राह पर तो सभी चलते हैं, परंपराओं की भित्तियों को तोड़ रूढ़ियों के कांटे बीनते हुए नई पगडंडी तैयार करना सचमुच बड़े साहस और जोखिम का काम है। भारतीय नारी की मुक्ति और उसे वर्तमान स्तर पर लाने के लिए न जाने कितनी स्त्रियों ने यह जोखिम उठाया है।"[6]

इस प्रकार भारतीय नवजागरण, नारी-मुक्ति आंदोलन, भारतीय स्वाधीनता-संग्राम, मार्क्सवादी-प्रगतिवादी चेतना आदि के कारण जीवन के हर क्षेत्र में कुछ महिलाओं ने अभूतपूर्व सिद्धियां प्राप्त की हैं। पुलिस, शासन-प्रबंध, राजनीति, शिक्षा, कानून, मेडिकल सायन्स आदि अनेक क्षेत्रों में अनेक महिलाएं विशिष्ट स्थानों पर कार्यरत हैं। प्रस्तुत प्रबंध का संबंध महानगरीय जीवन से सम्बद्ध उपन्यासों से है, अतः महानगरीय परिवेश में जो इस प्रकार के नारी पात्र मिले हैं, उनकी विवेचना का यहां उपक्रम है।

महानगरीय परिवेश में ऐसे उच्चवर्ग में जो नारी पात्र आते हैं उनमें मिति (टेराकोटा), नीलिमा (अंधेरे बन्द कमरे), शकुन (आपका बण्टी), निन्नी (अनदेखे अनजान पुल), मिस जायसवाल तथा वसुधा (बैसाखियोंवाली इमारतें), सुषमा

(पचपन खंभे लाल दीवारें), श्यामा (अन्तराल), रायना (दो दिन), कली (कुरूपकली) [illegible] सीता (नरक-दर-नरक), रेखा निगम (नावें), मनीषी (सीढ़ियाँ), वसुधा (तत्सम), सुरेखा (अपनी-अपनी यात्रा), सुषमा (अँधेरे बन्द कमरे), मालती (काली आँधी), तहमीना (अकेला पलाश), मिसेज रिजवी (चिड़ियाघर) आदि की गणना कर सकते हैं। [7]

"टेराकोटा" की मिति पहले तो छोटी-मोटी नौकरियाँ करती हैं, परन्तु उसके साथ ही साथ आई.ए.एस. की तैयारी भी करती रहती है और अन्ततः अपनी लगन और प्रतिभा के बल पर आई.ए.एस. में चुन ली जाती है। "अँधेरे बन्द कमरे" की नीलिमा ने नृत्य के क्षेत्र में अपना स्थान बना लिया है और इस संदर्भ में वह योरोप की टूर पर भी जाती है। इसी उपन्यास की सुषमा पत्रकार है। "आपका बण्टी" की शकुन कालेज में प्राचार्या है। "अनदेखे अनजान पुल" की निन्नी आइ.ए.एस. करके अन्ततः कमिश्नर के पद तक पहुँचती है। "शीशा खिड़कियोंवाली इमारतें" की मिस जायसवाल कालेज में हिन्दी की प्राध्यापिका है तो इसी उपन्यास की वसुधा एबस्ट्रेक्ट पैंटिंग की जानी-मानी चित्रकार है। "पचपन खंभे लाल दीवारें" की सुषमा कालेज में प्राध्यापिका तथा गर्ल्स हास्टेल की वार्डन है। "अन्तराल" की श्यामा भी कालेज में प्राध्यापिका है। "दो दिन" की रायना भी अच्छी पोस्ट पर है। प्रत्येक छुट्टी में वह किसी योरोपीय देश का दौरा करती है। "दो दिन" में जितने स्त्रियों की कथा को लिया है, उनमें वह विवेना से प्राप्त आयी हुई है। इन सबसे उसके अच्छे पद पर होने के संकेत मिलते हैं। उसके सामने कोई आर्थिक समस्या नहीं है। "कुरूपकली" की कली अपने सौन्दर्य, कोन्वेण्ट की शिक्षा और वाक्चातुर्य के बल पर अच्छी-अच्छी कंपनियों में

ऊँचे पदों पर कार्य करती है । "नरक-दर-नरक " की नीता गुप्ता कालेज में प्राध्यापिका है । "नावें " की रेवा निगम एक स्कूल में प्रिंसिपल है ।×इसी×उपन्यास×की× " पतझड़ की आवाजें " की उषा अधिक शिक्षित न होते हुए भी पुरुषों कौ फँसाने की कला में माहिर होने के कारण एक अच्छी कंपनी में प्राइवेट सेक्रेटरी के पद पर पहुँच जाती है । "सीढ़ियाँ " उपन्यास की मनीषी डाक्टर है । "तत्सम" की वसुधा तथा " उसके हिस्से की धूप " की मनीषा कालेज में लेक्चरार हैं । कुसुम अंसल द्वारा प्रणीत उपन्यास "अपनी-अपनी यात्रा " की सुरेखा ऐडवोकेट है, तो काली आँधी" की मालती तथा "अपना मुहल्ला " की अपना राजनीतिज्ञ हैं । मेहरुन्निसा परवेज कृत " अकेला पलाश " की तहमीना तथा गिरिराज किशोर कृत "चिड़ियाघर " की मिसेज रिज़वी उच्च अधिकारी पद पर आसीन हैं । सुरेन्द्र वर्मा कृत " मुझे चाँद चाहिए " की नायिका तो शाहजहाँपुर के सामान्य धरातल से उठकर दिल्ली एन.एस.डी. की चर्चित कलाकार तथा बाद में बॉलीवुड की प्रसिद्ध अभिनेत्री बन जाती है । बॉलीवुड से भी आगे जाकर उसने हॉलीवुड की कुछ फिल्मों में भी काम किया है । इस उपन्यास की कंचनप्रभा भी बॉलीवुड की अभिनेत्री है । इसी उपन्यास की दिव्या कात्याल अंग्रेजी की प्रोफेसर है । प्रभा खेतान कृत "छिन्नमस्ता " की प्रिया इण्टरनेशनल एक्सपोर्ट का बिजनेस संभालती है । इस प्रकार उच्चपदों में नारियों ने अब उनके लिए वर्जित क्षेत्रों में भी प्रवेश करना शुरू कर दिया है ।

प्रशासनिक एवं उच्च सेवाओं में महिलाओं की अल्प संख्या के लिए समाज का मनोविज्ञान भी उत्तरदायी है । इस संदर्भ में डा. रोहिणी अग्रवाल के निम्नलिखित विचार चिंतनीय हैं —" नारी को शिक्षा एवं कामकाज के अवसर सुलभ कराने के बावजूद आज भी हमारा समाज नारी जीवन की चरम उपलब्धि विवाह में मानता है ।

कामकाज करना या शिक्षा ग्रहण करना उसके लिए किसी सीमा तक पति की प्रतीक्षा माने जाते हैं । यह प्रवृत्ति स्वयं नारी में भी है । यही कारण है कि बहुत कम महिलाएं उच्चतम शिक्षा एवं काम-काज को हृदय से स्वीकार करती हैं और इनमें जीवन की सार्थकता तलाशती हैं । प्रेमिला कपूर के 1960 , 1870 तथा 1973 के सर्वेक्षणों के अनुसार एक से पांच प्रतिशत महिलाएं ऐसी थीं जो वास्तव में अपने कामकाज के प्रति समर्पित थीं । अतः पुरुष की भांति विवाह को जीवन की प्रासंगिक आवश्यकता मानकर व्यवसाय में आत्म-सार्थकता तलाशने का भाव इन्हीं मुट्ठीभर महिलाओं में उपलब्ध था । * 8

कामकाजी महिलाओं का मध्यवर्ग :

जिनके पास विश्वविद्यालयों की ऊंची डिग्रियां हैं और जो ऊंचे पदों पर कार्य करती हैं , उनकी परिगणना तो उच्चवर्ग में होती है ; परन्तु हाईस्कूल पास या ग्रेज्युएट महिलाएं जो प्राथमिक या माध्यमिक स्कूलों में अध्यापिकाएं हैं , या सरकारी-गैर-सरकारी दफ्तरों में काम करती हैं , टाइपिस्ट या स्टेनो हैं , नर्स हैं , ऐसी महिलाओं को हम कामकाजी महिलाओं के मध्यवर्ग में रख सकते हैं ।

यहां एक तथ्य गौरतलब होगा कि इस वर्ग में आनेवाले अधिकांश महिला-पात्र ग्रामीण , कस्बाई या नगरीय परिवेश के उपन्यासों में मिलते हैं । यहां केवल महानगरीय परिवेश की बात है । इसका अर्थ यह कतई नहीं कि महानगरों में मध्यवर्गीय काम-काजी महिलाएं नहीं होतीं , बल्कि बहुत ज्यादा होती हैं , पर हमें जो महानगरीय उपन्यास प्राप्त होते हैं , उनमें लेखकों या लेखिकाओं का ध्यान अधिकांशतः उच्चवर्गीय कामकाजी महिलाओं

पड़ गया है । अध्यापन का व्यवसाय महिलाओं के लिए प्रायः उप-युक्त माना गया है । अतः कई नारी-पात्र मिलते हैं जो प्रायमरी या माध्यमिक स्कूलों में कार्य कर रही हैं । शिवानी के कई उपन्यासों में ऐसी अध्यापिकाओं का उल्लेख मिलता है । ममता कालिया द्वारा लिखित उपन्यास " नरक-दर-नरक " की सीता गुप्ता एक कर्मठ अध्यापिका है । मूलतः वह संस्कृत की अध्यापिका है, परंतु स्कूल में जब उसे हिन्दी विषय दिया जाता है, तब भी खूब परिश्रम करके विद्यार्थियों को मनोयोग से पढ़ाती है । अपनी इस अध्यापन-प्रतिबद्धता के कारण वह छात्रों में भी काफी प्रिय है । [7] इतना तो सर्व-विदित है ऐसे अध्यापकों की छात्र भी इज्जत करते हैं ।

मन्नू भण्डारी तथा राजेन्द्र यादव द्वारा प्रणीत " एक इंच मुस्कान " की शकुन संगीत की शिक्षिका है । इस उपन्यास की रंजना अमला भी शिक्षिकाएं हैं । दीप्ति खंडेलवाल कृत "प्रिया " की सौदामिनी भी शिक्षिका है । मोहन राकेश कृत "अन्तराल" की श्यामा हाईस्कूल में शिक्षिका के पद पर कार्य करती है । यहाँ एक विशेष मुद्दे पर ध्यान नहीं दिया गया है । खानगी स्कूलों में काम करने वाली आर्थिक शोषण भी होता है । जितनी राशि पर उनके हस्ताक्षर लिए जाते हैं, उतना वेतन उन्हें मिलता नहीं है । कहीं-कहीं तो उनसे अग्रिम राशि ली जाती है और उसीमें कुछ रकम मिलाकर उन्हें तनख्वाह दी जाती है परंतु आलोच्य उपन्यासों में इस पहलू को प्रायः अनदेखा किया गया है ।

ममता कालिया कृत " बेघर" उपन्यास की नायिका संजीवनी अपने विवाह के पूर्व एक आफिस में कार्य करती थी और इसलिए उसका पति उसके चरित्र पर शंका-कुशंका करता था और अन्ततः शंका का यह भुजंग उनके दाम्पत्य-जीवन को डंस ही जाता है । इस उपन्यास की विजया मेनन भी सरकारी दफ्तर में नौकरी करती है । निरुपमा सेवती कृत " पतझड़ की आवाजें " में अनुभा, उषा तथा सुनीता वर्मा

स्टैनो या टाईपिस्ट जैसे काम करती है । उनके कार्यालय के चीफ धीरेन वर्मा उदार और सच्चरित्र व्यक्ति हैं , पर उनकी पत्नी को नौकरी से संतोष नहीं होता । वह रातोंरात अमीर हो जाना चाहती है । अतः वे नौकरी छोड़कर व्यवसाय शुरू करते हैं । फलतः उनके स्थान पर सी.के. नामक व्यक्ति पदोन्नत होकर आता है । सी.के. लम्पट और विलासी प्रकृति का है । वह पहले अनुभा और बाद में सुनिता को चारा डालने की कोशिश करता है, पर ये दोनों उसके लिए तैयार नहीं होतीं । अतः योग्यता में कम ऐसी उषा की पदोन्नति हो जाती है , क्योंकि उषा पैसा और पद के लिए कुछ भी करने को तैयार रहती है । इस प्रकार अनुभा और सुनिता तो मध्यवर्ग में ही रह जाती है , उषा प्रथम वर्ग में पदोन्नत हो जाती है । [10]

"डाक बंगला" (कमलेश्वर) की इरा मि. बतरा के यहाँ पहले फोन स्टेण्डण्ट की नौकरी करती थी , परंतु उसका प्रेमी विमल उसके और मि. बतरा के संबंधों को लेकर शंकाशील था , अतः एक दिन इरा को छोड़कर वह मुंबई चला जाता है । तब इरा बेसहारा हो जाती है और किन्हीं कमजोर क्षणों में मि. बतरा को समर्पित हो जाती है । मि. बतरा से संबंध जोड़ने के कारण वह उसकी प्राइवेट सेक्रेटरी बन जाती है । इस प्रकार वह भी मध्यवर्ग से प्रथम वर्ग में संक्रमित हो जाती है । यही बात "नावें" की मालती पर लागू होती है । सोमजी से परिचित होने से पूर्व वह कई छोटी-मोटी नौकरियाँ करती है , परंतु जब उसे सोमजी से प्रेम हो जाता है तब वह उनकी पी.ए. हो जाती है । "बेराफोटा" की मिस बाटलीवाला स्टेनोग्राफर है । इसी उपन्यास की मिति आई.ए.एस. में निकल जाने के पूर्व कई छोटी-मोटी नौकरियां करती हैं । "अंधेरे बन्द कमरे" की नीलिमा अपने पति की मदद

करने के लिए विदेश में "बेबी सीटिंग" का काम करती है । नीलिमा का पति हर्बर्ट हरवंस अपनी थीसिस पूरी करने के सिलसिले में लंदन जाता है । वहाँ उसकी हाई कमीशन की नौकरी छूट जाती है, तब विदेश में उनकी आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो जाती है । ऐसी स्थिति में हरवंस की सहायता करने के लिए वह "बेबी सीटिंग" का काम शुरू करती है, हालांकि अंग्रेज बच्चों के खाँचिए और निकरें धुलवाने के इस काम से नीलिमा घिनियाती थी । परन्तु मरता क्या न करता वाली बात थी । जैसे ही हरवंस के आर्थिक स्रोत ठीक होने लगते हैं वह इस काम को छोड़ देती है ।[11]

हिमांशु जोशी कृत " छाया मत छूना मन " की वसुधा को अपने घर-परिवार की पारिवारिक-आर्थिक विवशताओं के कारण आफिसों में काम करना पड़ता है, इतना ही नहीं अपनी लाचारगी के कारण यौन-शोषण का भी शिकार होना पड़ता है । मेहरुन्निसा परवेज के उपन्यास " उसका घर " की एलमा भी आफिस में नौकरी करती है । रजनी पनिकर के उपन्यास " दो लड़कियाँ " की रंजना यद्यपि एम.ए. पास है, परन्तु उसे अपनी योग्यता के अनुसार नौकरी नहीं मिलती है । दूसरी तरफ पारिवारिक मजबूरियाँ ऐसी हैं कि उसे नौकरी के बिना चल नहीं सकता । अतः जो भी नौकरी मिले उसे करने के लिए वह विवश है । प्रारंभ में वह एक दफ्तर में मामूली-सी नौकरी करती है । चार साल के बाद भी कुल मिलाकर उसका वेतन पांच सौ रुपये होता है । हालांकि उस दौर में पांच सौ रुपयों का मूल्य आज के पांच सौ रुपयों जितना नहीं था । रजनी पनिकर के ही उपन्यास " महानगर की मीता " अपने प्रेमी को पढ़ाने और स्थापित करने के लिए आफीस में नौकरी करती है, परंतु पढ़-लिखकर तैयार होने के पश्चात् वह मीता को छोड़कर अन्य लड़की से विवाह कर लेता है ।

निम्नवर्ग की कामकाजी महिलाएं :

महानगरों में कई छोटे-मोटे कारखानों में स्त्रियां लेबर का काम करती हैं । ये महिलाएं ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं होतीं । कई बार रोजाना पगार (डेयली वेजेज) पर लगाया जाता है । उसमें छुट्टी वगैरह कुछ नहीं होता । जितने दिन काम करो उतने दिन का पगार मिलता है । बीच में कुछ दिनों के लिए उन्हें नौकरी में से हटा भी दिया जाता है, ताकि वे कभी स्थायी वर्कर का दावा न कर सकें । स्थायी कर्मचारियों को सरकार के कायदों के अनुसार अनेक लाभ दिये जाते हैं । इस प्रकार के लाभ उन्हें प्राप्त न हों इसलिए कारखाने के मालिक इस प्रकार के दांव-पेच खेलते रहते हैं । ये महिलाएं अशिक्षित या कमशिक्षित और प्रायः पिछड़े तबके की होने के कारण यदि सुंदर हुईं तो उनकी लाचारी का फायदा उठाते हुए उनका यौन-शोषण भी किया जाता है । इस प्रकार आर्थिक व शारीरिक दोनों प्रकार के शोषण का उन्हें शिकार होना पड़ता है ।

भीष्म साहनी कृत "बसंती", मंजुल भगत कृत "अनारो", कुसुम अंसल कृत " उसकी पंचवटी ", दीप्ति खंडेलवाल कृत " प्रिया " जगदम्बाप्रसाद दीक्षित कृत "मुरदाघर " ; शिवानी कृत "चौदह फेरे "," कृष्णकली", "श्मशानचंपा", "रथ्या" आदि उपन्यासों में हमें निम्नवर्ग की कामकाजी महिलाओं का चित्रण उपलब्ध होता है ।

इनको हम निम्नवर्ग और अति-निम्नवर्ग जैसे विभागों में बांट सकते हैं । कम-शिक्षित और कारखानों में काम करने वाली महिलाओं को हम निम्नवर्ग के अंतर्गत रख सकते हैं । दूसरों के घरों में जो खाना बनाने का काम करती हैं, उनको भी इस वर्ग में रखा जा सकता है । परंतु जो महानगरों की झोंपड़पट्टियों में रहती हैं और मध्यवर्ग

तथा उच्चवर्ग के लोगों के मकानों और फ्लैट या बंगलों पर कपड़ा-बरतन, झाड़ू-पोंछा आदि काम करती हैं उनको हम अति-निम्नवर्ग में रख सकते हैं। कुछ महिलाएं कुछ संपन्न लोगों के यहां पूर्ण-कालिक नौकरानी का काम करती हैं। उनकी स्थिति कुछ अच्छी होती है। उनको हम अति-निम्नवर्ग में न रखकर निम्नवर्ग के अन्तर्गत रख सकते हैं। ऊपर शिवानी के जिन उपन्यासों का उल्लेख किया गया है, उनमें इस प्रकार नौकरानी बाइयों का चित्रण मिलता है। जिन घरों में वे काम करती हैं उनके प्रति उनके मन में भी वफादारी के भाव होते हैं। उनघरों में कई बार घरवाले भी उनके साथ सम्मान-जनक व्यवहार करते हैं और रिश्तेदारी के किसी नाम से बुलाते हैं - जैसे मौसी या काकी या चाची आदि। "आपका बण्टी" में शकुन के यहां जो बाई है, जिसे बण्टी की देख-भाल के लिए रखा गया है, मौसी कहकर ही बुलाया जाता है।

महानगरों में जगह-जगह पर झोंपड़पट्टियां होती हैं, ये कामवाली बाइयां प्रायः ऐसी झोंपड़पट्टियों में रहती हैं और दो-तीन परिवारों में कपड़ा-बरतन, झाड़ू-पोंछा आदि का काम करती हैं। इस प्रकार ये बेचारी दिनभर खटती रहती हैं और अपना तथा अपने परिवार का पेट पालती हैं। इनके पति या प्रेमी प्रायः निठल्ले, निखट्टू और कामचोर किस्म के पुरुष होते हैं। इस संदर्भ में डा. चन्द्रकान्त देसाई ने लिखा है —" जीवन की हर लड़ाई वे अकेले लड़ती हैं और कठिनाइयों के आगे कभी हार नहीं मानतीं। वे बड़ी-बड़ी कोठियों में काम करती हैं और अपने तथा अपने परिवार को, पति को भी, पालती हैं। यह नहीं कि उनका पति कोई अपाहिज या अपंग व्यक्ति होता है। वह एक निठल्ला, शराबी, जुआरी व्यक्ति होता है। वे बीवी की कमाई पर ऐश करते हैं। वस्तुतः ऐसे समाज में

निस्सहाय औरतों को पुरुष के नाम का एक छत्र चाहिए । ... इसके लिए ये स्त्रियाँ उनकी मार , धौंस , जूते-चप्पल सब बरदाश्त कर लेती हैं । कुछ भी है , "अपना मरद तो है " , यह भावना उनमें काम करती है ।" [12]

भीष्म साहनी कृत " बसन्ती" उपन्यास की बसन्ती की स्थिति तो और भी विचित्र है । वह अपने पति की ब्याहता औरत नहीं है । वह बेचारी दिन-रात मेहनत-मजदूरी करती है और पति तथा पति की ब्याहता औरत दोनों का पेट पालती है । उसकी इसी कमाई पर ये दोनों मौज करते हैं ।

मंजुल भगत के उपन्यास " अनारो" की अनारो भी अपने निखट्टू पति नंदलाल का हर तरह से ध्यान रखती है । नंदलाल को अच्छा खाना चाहिए , शराब चाहिए और जुआ खेलने के लिए पैसा चाहिए । ये सब अनारो करती है । ऊपर से उसके तीन-चार बच्चों को पालती है । नंदलाल बीच में कुछ दिनों के लिए गायब हो जाता है । अनारो को उसकी परवाह नहीं । पर अनारो यह बरदाश्त नहीं कर सकती कि नंदलाल उसकी छाती पर किसी सौत को बिठाये । एक बार नंदलाल जब ऐसा करता है , तब वह डटकर उसका मुकाबला करती है । अतः नंदलाल उसे अलग झोंपड़े में रख लेता है । बाद में वह औरत किसी और के साथ चली जाती है । उसे नंदलाल से एक बच्चा था । वह उस बच्चे को अपने साथ ले गयी थी । जब अनारो को इस बात का पता चलता है कि उसके मरद का बच्चा किसी और के यहाँ पल रहा है । उसकी गैरत को यह बात नागवार गुजरती है और वह जाकर उसे अपने यहाँ ले आती है । "आपका बण्टी" के अजय और शकुन को तथा "वे दिन " के जाक और रायना को अपना बच्चा भी भारी पड़ता था । तब मन में अचानक तुलना हो जाती है कि कहाँ शकुन और रायना और कहाँ अनारो । बाहरी समृद्धि पर भीतर की

कंगालियत । अनारो बाहर से कंगाल है पर उसके भीतर की संपन्नता अतुलनीय है । वह सोचती है कि एक घर का काम और कर लूंगी पर बैठे मरद की आन पर कोई आंच नहीं आनी चाहिए ।

ऐसी औरतें बड़ी जुझारू और जीवट वाली होती हैं । सच ही मंजुल भगत की अनारो एक क्लासिक-चरित्र है । इस अनपढ़ औरत पर हजारों विदुषियां न्यौछावर की जा सकती हैं । इस चरित्र को देखकर शैलेश मटियानी की "महाभोज" कहानी की सिवरत्ती का स्मरण हो आता है । सिवरत्ती का पति चेतीराम बेकार बैठा है । घर-गृहस्थी का सारा बोझ सिवरत्ती पर पड़ता है । चार बच्चे हैं, पांचवां आने वाला है । फिर भी गृहस्थी की गाड़ी खींचे जा रही है । चेतीराम में जातीय इच्छा कुछ अधिक है । चेतीराम का पिता मरणशैया पर पड़ा हुआ है । तब चेतीराम कहता है —
" सिब्बो, तीन-चार रातों का जागरन हो लिया । जी बहुत बैरागी और दुःखी हो गया । कुछ पैसे-धेले दे तो जरा सलीमो को हो लेता ।"[13] यहां चेतीराम मीरगंज की किसी वेश्या के पास जाने की बात करता है और सिवरत्ती उसका मन रखने के लिए पैसे देती है । चेतीराम का बाप जब मर जाता है, तब चेतीराम सर्वे के नाम पर रोता है । उस समय सिवरत्ती जो बात करती है, वह अनारो की याद दिला देती है —

" मोती के बापू, बाप के मरने का रोना सभी मरदों को शोभा देता होगा, तुम्हारा यह जोरू के आगे का रोना बर्दाश्त न होगा । अरे बेवकूफ, मैं कोई किसी राह चलते की बेसवा हूं, या तुम्हारी घरवाली ? जिस बहुरिया से अपनी घर-गिरस्ती भ ही न सधी, उसका तो मीरगंज में जा बैठना भला ।"[14]

और पचास तोले चांदी की करधनी बेचकर सिवरत्ती अपने ससुर का कारज निबटाती है । वह बिरादरी वालों को भोज देती है, अन्यथा चेतीराम तो गुड़ की डली बंटवाकर मिट्टी उठवाने की

बात करता था ।

"मुरदाघर" (जगदम्बाप्रसाद दीक्षित) उपन्यास में मुंबई की झोंपड़पट्टी के जीवन को चित्रित किया गया है । इस उपन्यास में झोंपड़पट्टी में बसने वाली निम्न वर्ग की बाइयों और वेश्याओं के जीवन के यथार्थ की परत-दर-परत खोली गई है । उनके मानवीय पक्ष को उकेरा गया है । प्रस्तुत उपन्यास की मैना भी मेहनत-मजदूरी करके अपना तथा अपने पति पोपट का पेट पालती थी । पर पोपट की पैसे कमाने की हवस, रातोंरात हाजी सेठ बन जाने की हवस और उसके हवाई सपनों के कारण उसे वेश्या बनना पड़ता है । और सच तो यह है कि पोपट उसका वास्तविक पति भी नहीं है । बस, कहने भर का पति है । ~~xउसकिx~~ उसीने धोखा देकर मैना को इस राह पर डाला था । पर रेल से कटकर जब वह मर जाता है तब यही मैना हैयाफाड़ रुदन करती है । ये उच्च मानवीय भावनाएं इस कीचड़ में कमल के मानिंद हैं ।

कामकाजी महिलाओं का दोहरा उत्तरदायित्व :

शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ अब स्त्रियाँ भी पढ़-लिखकर नौकरी करने लगी हैं । महिलाओं का यह नौकरी करना कई कारणों से है : कहीं पिता के स्थानापन्न होकर वे नौकरी कर रही हैं । कहीं पति के बेकार हो जाने पर उसे यह उत्तरदायित्व निभाना पड़ता है । कहीं अपने प्रेमी के सपनों को साकार करने के लिए वह नौकरी करती है, जैसे "महानगर की मीता" की मीता तथा "डाक बंगला" की इरा । कहीं आर्थिक मजबूरियाँ उसे नौकरी के लिए प्रेरित करती हैं । आजकल महंगाई इतनी बढ़ती जा रही है, बच्चों की परवरिश और शिक्षा पर इतना खर्च हो रहा है कि एक अकेले की कमाई पर गृहस्थी की गाड़ी को खींचना मुश्किल हो रहा है । अतः अपने पति तथा घर-गृहस्थी की सहायता करने की मंशा से स्त्री को नौकरी

करनी पड़ती है । यहाँ पर महिला द्वारा नौकरी करना कोई अंतिम विवशता नहीं है, केवल परिवार की सहायता पहुँचाना मात्र होता है । परिणामतः परिवार में उनका स्थान मुखिया का नहीं होता, सहायक होता है, द्वितीयक होता है । इनके लिए नौकरी आवश्यक होते हुए भी अनिवार्य नहीं है । "प्रिया" उपन्यास की प्रिया, "अपने पराए" की नीलिमा, "कर्करेखा" की ऋतु आदि इसके उदाहरण हैं । इस प्रकार अर्जन में सहायिका होना, पिता की भूमिका के लिए (जैसे "पचपन खंभे लाल दीवारें" की सुषमा, "छाया मत छूना मन" की वसुधा, "टेराकोटा" की मिति आदि), पति की भूमिका के लिए ("नरक-दर-नरक" की नीता गुप्ता), आर्थिक स्वतंत्रता की चाह के लिए, पारिवारिक दबाव, आत्म-सार्थकता की तलाश, समय के खालीपन को भरने के लिए आदि आदि कारणों से महिला एक कामकाजी महिला बनती है ।

चाहे किसी भी कारण से महिला कामकाजी महिला होती है, एक औसत कामकाजी पुरुष की तुलना में उसका दायित्व दोहरा हो जाता है । पश्चिम में महिलाएँ जहाँ नौकरी करती हैं और अपने माता-पिता, भाई-बहन या पति को आर्थिक सहायता पहुँचाती हैं; वहाँ पुरुषों की सोच में भी कुछ बदलाव आया है । परन्तु अपने यहाँ कुछ मामलों में पुरुष जहाँ आधुनिकता का दम्भ भरता है, वहाँ उसके भीतर उसके पुरुष होने का जो "अहं" है वह निरंतर ठाठें मारता रहता है । पश्चिम में पुरुष अपनी पत्नी को घरकाम में, खाना बनाने में मदद करता है । बल्कि दोनों मिलकर यह काम करते हैं । परन्तु अपने यहाँ पुरुष अपना "पुरुषपना" (9) अभी छोड़ नहीं पाया है । नौकरी के अतिरिक्त (यदि वह विवाहित है तो) वह दूसरा कोई काम नहीं करता । स्त्री बेचारी नौकरी भी करती है और घर का "ढसरड़ा" भी करती है । "नरक-दर-नरक" की नीता गुप्ता तथा "बेघर" की संजीवनी इसके उदाहरण हैं ।

पत्नी जब नौकरी करती है तो पति-पत्नी में पारस्परिक समझौता होना चाहिए । पत्नी नौकरी भी करे और गृहिणी-धर्म भी निभाए यह नितांत असंभव-सा है । यदि पत्नी अच्छा कमाती है तो गृहकार्य के लिए किसी नौकरानी को रख लेना चाहिए । परंतु कुछ पति तो इसमें महाजन को भी मात करते हैं । "अग्निगर्भा" (अमृतलाल नागर) की सीता प्राध्यापिका है । वेतन के उपरांत उसे अपनी पुस्तकों की अच्छी-खासी रायल्टी भी मिलती है । कालेज के प्रकाशन विभाग का काम देखने के लिए एक निश्चित धन-राशि मिलती है । बावजूद इसके अपनी इच्छा से वह एक नया पैसा भी खर्च नहीं कर सकती । उसका पति रामेश्वर महीने की पहली तारीख को सारी रकम उससे हथिया लेता है । इतना सब कमाने के उपरांत उसे घर-गृहस्थी के काम भी करने पड़ते हैं ।

लगभग इसी प्रकार की स्थिति "नरक-दर-नरक" (ममता कालिया) की सीता गुप्ता की भी है । सीता गुप्ता अध्यापिका है । अपने व्यवसाय के प्रति भी वह अत्यंत प्रतिबद्ध है । छात्राओं के साथ न्याय करने के लिए वह स्वयं छात्रा बन जाती है । उपन्यास में उसके संदर्भ में कहा गया है — "इतना अध्ययन शायद कोई शोध-छात्र भी न करते होंगे, जितना वह लेक्चर तैयार करने में करती है ।"[15] और ऐसा भी नहीं है कि उसके पास भरपूर समय और न्यून दायित्व हैं । तीन बच्चों तथा गृहस्थी के कार्यों से समय निकालना उसके लिए बड़ा मुश्किल होता है । तथापि उसका पति विनय, महा अविनयी है । असहयोगी और शंकाशील प्रकृति का है । वह हर बात का हिसाब रखता है । सीता कब जाती है, कब आती है, कितना समय रिक्शा में जाता है । कहने को सीता स्वयं कमाती है, पर घर में शासन पति का है । इस पर भी वह उस पर चरित्रहीनता का लांछन लगाता है । सीता इसे बर्दाश्त नहीं कर सकती और घर छोड़ने के लिए उद्यत हो जाती है । तब जाकर विनय महाशय

कुछ ढीले पड़ते हैं , क्योंकि सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी को वे यों ही खोना नहीं चाहते । सीता गुप्ता विनय के असहयोग से इतनी क्षुब्ध रहती है कि वह पत्नी तथा माँ की अपेक्षा स्वयं को विनय के घर की नौकरानी तथा आया मानने लगती है ।[16] ठीक यही स्थिति "बसंत फिर आयेगा " (हेमराज निर्मम) की सुषमा की भी है ।

ममता कालिया के ही उपन्यास "बेघर" की संजीवनी भी इस दोहरेपन की शिकार है । बम्बई की आपाधापी में नौकरी के स्थल पर समय से पहुंचना , दिन भर दफ्तर में खटना , शाम को दौड़ते-भागते घर आना । इन सबमें वह थककर चूर हो जाती है । अतः कभी यौन-कार्य की अनिच्छा व्यक्त करती है , तो पति परमजीत शंका करता है कि वह उसकी यौनेच्छा की पूर्ति कहीं बाहर अपने यार के साथ कर लेती है । वस्तुतः उसको सुहाग-रात से ही संजीवनी के प्रति शंका होने लगी थी , क्योंकि जैसा कि उसने दोस्तों से सुन रखा था या बाजारू पुस्तकों में पढ़ रखा था कि प्रथम रात को कौमार्य-पटल टूटता है और उससे रक्तस्राव होता है । पर संजीवनी के साथ ऐसा कुछ भी नहीं होता । अंततः वह संजीवनी को छोड़ देता है । ऐसा वह इसलिए कर पाता है कि वह आर्थिक दृष्टया पूर्णतया संजीवनी पर निर्भर नहीं था । स्थिति यदि 'नरक-दर-नरक ' की सीता गुप्ता और विनय जैसी होती तो वह किसी तरह इन संबंधों को निभाए रहता ।

इस प्रकार जहां स्त्री नौकरी करती है और पति का उसे कोई सहयोग नहीं मिलता , सहकार नहीं मिलता ~~वहां उसका~~ वहां उसकी स्थिति दो पाटों के बीच पीसते जाने की बनती है । ऐसी महिलाएं बहुत लम्बे समय तक अपने व्यवसाय के प्रति प्रतिबद्ध नहीं रह सकतीं । जब तक शरीर साथ देता है , वे इस दोहरे बोझ को ढोती जाती हैं , परंतु प्रौढ़ावस्था की ओर प्रस्थान करते ही वे तन-मन से टूटने-बिखरने लगती हैं ।

कामकाजी महिला और दैहिक-शोषण :

आदि-अनादि काल से स्त्री का यौन शोषण किसी-न-किसी तरह होता रहा है । पहले सामंतकालीन समाज में उच्चवर्ग के पुरुष निम्नवर्ग की स्त्रियों का दैहिक-शोषण करते थे । आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में यही स्थिति कमोबेश रूप में पायी जाती है । परंतु महानगरीय परिवेश में जब स्त्रियां नौकरी या व्यवसाय हेतु घर की चहारदीवारी के बाहर आती हैं, तो उन्हें इस समस्या से किसी-न-किसी रूप में जूझना पड़ता है । "डाक बंगला", "छाया मत छूना मन", "पतझड़ की आवाजें", "नगरपुत्र हंसता है", "कुमारिकाएं", "रेत की मछली", "टंगता हुआ आदमी" आदि उपन्यासों में नारी के यौन-शोषण के विविध रूप हमें दृष्टिगोचर होते हैं ।

"डाक बंगला" की इरा की जो विवश परिस्थितियां हैं उनका लाभ लेते हुए कई पुरुष उसका यौन-शोषण करते हैं । वह विमल को प्रेम करती है । इरा और विमल दोनों नाटक के जीव हैं । अपना तथा विमल का खर्चा निकालने के उद्देश्य से इरा मि. बतरा की आफिस में फोन अटेण्डण्ट की नौकरी करती है, परंतु मि. बतरा की जो छवि है उसके कारण विमल को लगता है कि इरा के साथ भी मि. बतरा के अवैध संबंध होंगे । अतः इसी झुनझुनाहट में वह इरा को छोड़कर मुंबई भाग जाता है, जहां जाली नोटों के सिलसिले में उसे बारह साल की जेल हो जाती है । इधर अकेली और निस्सहाय इरा मि. बतरा की चिकनी-चुपड़ी बातों में आ जाती है और बिना विवाह के समर्पित हो जाती है । वह इस भ्रान्ति में है कि मि. बतरा उसे तहेदिल से चाहता है । उसका यह भ्रम तब टूटता है, जब उसे गर्भ रहता है और मि. बतरा उसे गिरा देने के लिए कहता है । इरा जब इसके लिए तैयार नहीं होती तब वह धोखे से गर्भ गिराने की दवाई खिला देता है और इरा से ज्यादा

धू-धपड़ करने पर उसकी पुरानी प्रेमिका शीला को उसकी जगह पर रख लेता है । इरा समझती थी कि मि. बतरा के जीवन में उसका गहरा स्थान है । विवाह न करते हुए भी वह स्वयं को उसकी असली पत्नी ही समझती थी , परंतु मि. बतरा के लिए वह मात्र अपनी हवस-पूर्ति का साधन मात्र थी । इस प्रकार एक बार जीवन की धुरी के गड़बड़ा जाने पर उसका जीवन असंतुलित हो जाता है । अपनी निराशा और हताशा में वह कहती है — " मेरा पड़ाव कहीं भी नहीं है । ... रास्ते में कोई गन्दी चाय की दूकान आ गई तो लोग वहाँ भी रुककर एक प्याला पी लेते हैं ।" [17] उसी प्रकार उसकी ज़िन्दगी में जो भी आया , वह उसे सहज रूप से स्वीकारती गई । उसकी ज़िन्दगी औरों के लिए एक पड़ाव ... एक "डाक बंगला " मात्र बनकर रह गई । [18]

"छाया मत छूना मन " की वसुधा को भी अपनी पारिवारिक-आर्थिक विवशताओं के कारण अपनी आफिस के बॉस के साथ दैहिक संबंध रखने पड़ते हैं । बॉस के साथ टूरिंग पर जाना पड़ता है । वहाँ होटलों में उसके साथ सोना पड़ता है । वसुधा को यह सब अपनी बहन कंचन के लिए करना पड़ता है । वसुधा एक कामकाजी महिला है । दफ़्तर में वह स्टेनो की नौकरी करती है । उसके वेतन से जैसे-तैसे माता-पिता , बहन तथा भाई का निर्वाह करना पड़ता है । बहन कंचन गलत रास्ते पर जा रही है । उसका विवाह करने के लिए उसे ढेर सारे रुपयों की जरूरत है । ये रुपये उसे दफ़्तर के "एस्टाब्लिशमेण्ट आफिसर " मि. चावला से ही मिल सकते हैं । चावला "पतझड़ की आवाज़ें " के सी. के. जैसा है । विवश लड़कियों को वैसे होटल में उतारना उसकी हिकमत उसे आती है । वह वसुधा को पैसा उधार के रूप में देता है , पर अपनी शर्तों पर । ये शर्तें कितनी अपमानजनक हो सकती हैं यह वसुधा जानती है । फिर भी वह उसके साथ बिना किसी हील-हुज्जत के चार दिन शिमला जाती है और उसके साथ होटल में ठहरती है । [19]

"पतझड़ की आवाजें" की अनुभा एक कुशल और चीवट वाली लड़की है। घर-परिवार की आर्थिक विवशताओं और पिता की दयनीय स्थिति के कारण बी.ए. की पढ़ाई छोड़कर एक आफिस में नौकरी कर लेती है। पढ़ाई के साथ उसने टाईपिंग का कोर्स भी किया था। वह काम आ जाता है। अनुभा को अपनी नौकरी से संतोष है। उसके बॉस धीरेन वर्मा एक सच्चरित्र व्यक्ति हैं। उनके प्रेमपूर्ण व्यवहार से अनुभा को बहुत राहत मिलती है। परंतु उसका यह सौभाग्य अधिक समय नहीं ठहरता। वर्माजी नौकरी छोड़कर व्यवसाय की ओर जाते हैं और उनकी जगह पर सी.के. आता है। सी.के. लंपट और विलासी प्रकृति का है। वह अनुभा को पी.एस. का पद आफर करता है, किन्तु उसके साथ जो शर्तें थीं उनको अनुभा का आत्म-सम्मान स्वीकार नहीं करता। उसके बाद आफिस की स्टेनो सुशीला को फँसाने की चेष्टा करता है, परन्तु जब वह भी इन्कार कर देती है, तब वह उषा नामक एक युवती को वह आफर देता है। उषा उस पद के योग्य नहीं थी, परंतु देह को भुनाकर कुर्सी हासिल करने में उसे किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है। उसका तो स्पष्ट मानना है: "इस मर्द जात के साथ तभी सोओ, अगर माल हासिल होता हो या पोजिशन हासिल होती हो।"[20] अपने इस सिद्धान्त के चलते कामचोर तथा अकार्यकुशल होते हुए भी वह सी.के. की पर्सनल सेक्रेटरी बन जाती है। अल्प वेतन में भी वह बड़ी-बड़ी दावतें देती है। अतिथियों को महँगी विलायती शराब पिलाती है। अतः दैहिक-शोषण का दूसरा पहलू यहाँ मिलता है। अनुभा और सुशीला को योग्यता के बावजूद वह पद हासिल नहीं होता, जब कि उषा में वह योग्यता न होते हुए भी, वह पद उसे आफर होता है। इससे यह प्रमाणित होता है कि औरत को नौकरी में आगे बढ़ने के लिए अपने देह का सौदा करना पड़ता है। जो महिलाएं इसे राजी-खुशी स्वीकार लेती हैं वे उषा की भाँति सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ती जाती हैं और जो मना करती हैं वे एक ही स्थान पर कम वेतन में सड़ती रहती हैं।

"नगरवधू हंसता है " (धर्मेन्द्र गुप्त) का परमेश्वरी अपने ऊँचे ओहदे का लाभ उठाकर लड़कियों का दैहिक-शोषण करता है । वह उन लड़कियों को अपने चंगुल में फँसाता है जिन्हें नौकरी की अत्यंत आवश्यकता होती है । नौकरी दिलाने का आश्वासन देकर वह उन्हें अपनी मित्र बना लेता है । मित्र अर्थात् "गर्ल फ्रेण्ड" जिसका भारतीय संदर्भ में अर्थ होगा -- " घण्टे-दो घण्टे की रखैल । " [21]

परमेश्वरी जैसे कामातुर और लंपट अधिकारियों के कारण उनकी जाल में फँसने वाली लड़कियाँ कितनी व्यथित होती हैं, उसका कुछ-कुछ अनुमान " पतझड़ की आवाजें " के कुछ प्रसंगों से हो जाता है । प्लास्टिक वर्क्स का मालिक अपनी स्टेनो को बाँहxx खींचकर अपनी जाँघ पर बिठा लेता है । [22] शहर के प्रख्यात सोलिसिटर का पुत्र अपने पिता की आफिस की टाईपिस्ट को छुट्टी के बाद भी देर रात तक अपनी केबिन में रोके रखता है ।[23]

इन कटु अनुभवों की भोक्ता अनुभा के मन में एक प्रश्न घुमड़ता रहता है कि महिला के लिए नौकरी का अर्थ क्या आत्म-सम्मान को तिलांजलि देना होता है ? उसे दुःख है कि यहाँ व्यक्ति ने जीवन में उपभोक्ता संस्कृति को प्रमुख बना डाला है । इस प्रवृत्ति के चलते जब अधिकारी-कर्मचारी के बीच जब दैहिक संबंध आ जाते हैं तब योग्यता की क्या कीमत रह जाती है ? नारी का मान-सम्मान कहाँ रह पाता है ? [24]नारी की स्थिति तब और भी विडंबनापूर्ण हो जाती है जब अपने ही किसी परि-वार जन द्वारा उसे किसी पुरुष की कामाग्नि में समिधा की भाँति झोंक दिया जाता है । "उसका घर " की रेखा के साथ बिल्कुल यही होता है । इस उपन्यास में रेखा का भाई स्वयं अपनी बहन के जिस्म का सौदा मि. आहूजा नामक एक

व्यवसायिक से करता है जिसकी आफिस में वह काम करता है । एलमा के शरीर की एवज में वह उसके भाई का बैंक बैलेन्स बढ़ाता रहता है । मि. आहूजा पति-परित्यक्ता एलमा से कहता है — "भूल जाइये अपना जीवन , आप क्या थीं । आज से नया जीवन शुरू कीजिए , यह एक पुरुष की माँग है ।" [25] और एलमा मि. आहूजा की माँग को मानने वाली पहली नारी नहीं है । ऐसी तो अनेक प्रेमिकाएं उसके पास रही हैं । इस प्रकार लेखिका मेहरुन्निसा परवेज प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा यही प्रस्थापित करना चाहती है कि कहीं-कुछ बदला नहीं है । पहले राजा , नवाब और सामन्त-सरदार नारी का लैंगिक-शोषण करते थे , अब इस वणिक-युग में ये सेठ , व्यापारी और उद्योगपति अपने पैसों के जोर से ये जुल्म ढाते हैं । यहाँ डाक्टर साहब का एक दोहा स्मृति-पटल पर उभर रहा है —

" जो पहले होता रहा , अब भी वो ही हाल ।
आखिर चिड़िया क्या करें, डाल बने हैं जाल ।। " [26]

कृष्णा अग्निहोत्री द्वारा लिखित उपन्यास "कुमारिकाएं" भी नारी के दैहिक-शोषण को रेखांकित करने वाला उपन्यास है । [illegible] उपन्यास की नायिका सुचिता एक ईमानदार , कार्यकुशल तथा कर्तव्यनिष्ठ नर्स है । सुचिता की दक्षता के कारण ही डा. विनीत के मिशन क्लीनिक को विस्तार मिलता है । अपने स्वार्थ के कारण ही वह सुचिता से घनिष्ठता बढ़ाता है । उपन्यास में विनीत अत्यन्त शिष्ट एवं उदार व्यक्ति के रूप में उभरा है । परन्तु उसकी यह शिष्टता "नावें" के लोमड़ी की तरह ओढ़ी हुई है । वह भयंकर रूप से शोषक और स्वार्थी है । वह सुचिता का भावनात्मक दृष्टि से शोषण कर उसके भविष्य पर कुठाराघात कर देना चाहता है । विनीत के संदर्भ में उसका डाक्टर मित्र विक्रान्त बिलकुल सही मूल्यांकन करता है — " विनीत भटकता हुआ प्राणी है और उसे ढेरे बदलने

रहने का यन्त्रणा है ।" 27

"रेत की मछली" [कान्ता भारती] की नायिका कुन्तल अपनी भावुकता में शोभन से विवाह तो कर लेती है, परंतु बाद में उसे अपने निर्णय पर बहुत ही पछतावा होता है। कुंतल के पिता उसके इस विवाह का विरोध भी करते हैं और कहते हैं कि वह कवि और लेखक है, आज तुम पर प्राण देता है, कल उसकी संवेदना किसी और के साथ हो जायेगी। तब कुंतल अपने पिता से कहती है — " अगर वह दिन आ गया तो आपके घर लौटकर नहीं आऊंगी।" 28

विवाह के पश्चात कुंतल को शोभन के लंपट और विलासी और स्वार्थी स्वरूप का पता चलता है। अपनी बहुस्त्रीगामिता को औचित्य प्रदान करने के लिए वह कहता है — " कुन्तल, तुम मुझे महान लेखक बनाना चाहती हो न। उसके लिए पत्नी के अतिरिक्त प्रेरणा भी तो लेनी चाहिए।" 29 और उसकी वह प्रेरणा मीनल है। कुछ समय बाद वह भी बदल सकती है। शोभन में वासना का भयानक ज्वालामुखी है। उसमें हमें कामुकता की पराकाष्ठा मिलती है। एक बार तो शंका भी हो सकती है कि ऐसा कोई व्यक्ति नहीं हो सकता और लेखिका ने कुछ अतिरंजना से काम लिया है, पर फिर विचार आता है कि यह संसार अनेक विचित्रताओं से भरा हुआ है और अंग्रेजी की वह उक्ति स्मृति में कौंध जाती है कि — " सम टाइम्स रीयालिटी इज मोर स्ट्रेन्जर दैन फिक्शन. " और तब इसकी यथार्थता पर विश्वास करना पड़ता है। बेहोश होती पत्नी को भी निर्वस्त्र करके देखता है। एक बार मीनल को वह निर्वस्त्र करके आलिंगन देता है। एक बार तो पत्नी की गोद में मीनल का सिर रखकर उससे सहवास करता है। (30)

शोभन के ऐसे व्यवहार से तंग आकर कुंतल जब उससे तलाक

से लेती है और नौकरी की खोज में गली-गली भटकती है, तब उसे नारी के दैहिक-शोषण के अनेक आयामों का पता चलता है। हमारे समाज में पुरुषविहीन स्त्री की जो अवदशा होती है, उसका अनुभव उसे यहां होता है। इस संदर्भ में डा. चन्द्रकान्त देसाई ने लिखा है — " ऐसी स्त्री के ऊपर कामुक पुरुषों की नज़रें गीध-कौओं की तरह नोच-नोच खाने को मंडराती रहती है। पति शोभन से उसका संबंध विच्छेद हो गया है। पितृ-गृह में शरण पाने में उसकी कुंआरी बहन बीच में आ रही है। अतः समाचार-पत्र में विज्ञापित एक विज्ञापन को पढ़कर जब वह दिल्ली की एक तंग गली में पहुंचती है, तो वहां स्कूल के नाम पर मिलती हैं अंधेरी कोठरियाँ, बच्चों के नाम पर चौकीदारी और प्रिंसिपल के नाम पर एक लंपट व्यक्ति।" 31

"रेत की मछली" की कुंतल और "पतझड़ की आवाजें" की अनुभा जहां इस दैहिक-शोषण से समझौता नहीं करती, वहां "बंटता हुआ आदमी" (निरुपमा सेवती) की सुनंदा को अपने तथा परिवार के लिए पग-पग पर अपनी देह के चेक को भुनाना पड़ता है। इस संदर्भ में डा. रोहिणी अग्रवाल लिखती हैं — " देह को माध्यम बनाकर अर्थोपार्जन करना "बंटता हुआ आदमी" की सुनंदा की भी विवशता है। सुनंदा का सारा परिवार — मां, भाई व बहनें उसके अपने हैं। मात्र पिता अपने नहीं हैं। उसके अपने पिता उसके बाल्यकाल में स्वर्ग सिधार गये थे। सुनंदा की मां ने अपने चार बच्चों के कल्याण व गरीबी से परित्राण पाने के लिए एक ही उपाय सोचा — पुनर्विवाह। किन्तु दुर्भाग्यवश पतिरूप में जिस पुरुष का वरण किया, उसने शराब व जुए में लिप्त होकर न केवल सम्पूर्ण परिवार को दरिद्रता के अथाह सागर में डुबोया, बल्कि बड़ी बच्ची सुनंदा की पढ़ाई को भी छुड़ा दिया।" 32 इस प्रकार साढ़े-बारह साल की कच्ची उम्र में ही सुनंदा शरीर के

सौदे की कड़वी सच्चाई से वाकिफ़ हो गयी थी । उसके ही शब्दों में -- "मुझे उसकी हरकतें बुरी लगीं । पर सुनता कौन ? वह सारी गरीबी दूर कर सकता था । डैडी को आराम से शराब मिल जाती थी । कितना अच्छा इन्तजाम था ... पता है, पता है मैं कितने बरस की थी ... बारह साल सात महीने की ।" [39]

इस प्रकार सुनंदा साढ़े-बारह साल की अवस्था से ही ज़िन्दगी के इस कटु सत्य से परिचित थी । इन अनैतिक देह-विक्रय के सौदों में केवल शरदजी को ही वह तन-मन से चाहती है । किन्तु शरदजी भी शादीशुदा है । शरद शादीशुदा होते हुए भी स्त्री-सुख से प्रायः वंचित रहता है । बोम्बे की फिल्म-लाइन की आपाधापी में से वह दिन भर पिसता रहता है और पत्नी से प्रेम करने के मौके बहुत कम मिलते हैं । ऐसे में अपनी दैहिक इच्छापूर्ति के लिए वह सुनंदा से शारीरिक संबंध जोड़ लेता है । बदले में सुनंदा जो फिल्म-लाइन में प्रवेश पाना चाहती है उसकी थोड़ी सहायता कर देता है और उसे फिल्मों में छोटे-मोटे रोल दिलाकर उसकी सहायता करता है । अतः सौदा तो यहाँ भी है, पर वह और लोगों से काफ़ी बेहतर है ।

नारी का यह जो दैहिक-शोषण हो रहा है, उस संदर्भ में डा. रोहिणी अग्रवाल के निम्नलिखित विचार ध्यातव्य रहेंगे -- "कहना अनुचित न होगा कि तमाम जागृति तथा शिक्षा के बावजूद स्त्री को आज भी देह तथा उपभोग की सामग्री समझा जाता है । इसके लिए निर्विवाद रूप से दोषी है पुरुष जो क्रेता या विक्रेता बनकर "देह" को खरीदता या बेचता है । लेकिन नारी कोई निष्प्राण वस्तु या मूक पशु तो नहीं जो बिना चूँ-चपड़ किए इस हाथ से उस हाथ हस्तान्तरित होती रहे । उसका अपना व्यक्तित्व है, सम्मान है, संवेदनाएं हैं । अतः कुण्ठा का केंचुल तोड़कर ऐसे पाशविक कृत्यों का विरोध करना उसका दायित्व है । आत्म-

रक्षा हेतु यदि वह स्वयं प्रयास नहीं करेगी तो दूसरा कौन उसकी सहायता को आगे आएगा ? स्त्री यदि "देह" समझी जाती है तो इसका अर्थ है, स्वयं ऐसा समझे जाने की मूक स्वीकृति देना । स्त्री की पारिवारिक प्रतिकूलताओं तथा धनाभाव की विवशता का नाम देकर देह के व्यापार के साथ उसका संबंध जोड़ना उचित नहीं । ठीक ऐसा ही अर्थाभाव, ठीक ऐसी ही पारिवारिक प्रतिकूलताएं, ठीक ऐसे ही कष्ट पुरुष के समक्ष आ सकते हैं, आते हैं । लेकिन उसके पास भुनाने को "देह" नहीं । तो क्या वह जीवित नहीं रहता ।" [34]

डा. रोहिणी अग्रवाल स्वयं एक सम्मानित पद पर कार्यरत हैं । वह सम्प्रति महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक के हिन्दी विभाग में कार्यरतxहैंxx हिन्दी की प्राध्यापिका हैं । विवेच्य उपन्यासों में भी जो महिलाएं ऐसे ऊंचे पदों पर हैं उनका दैहिक-शोषण नहीं हो रहा, बशर्तें कि वे स्वयं ऐसा न चाहती हों । परंतु मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग की महिलाxxxxxx कामकाजी महिलाओं के सामने जो आर्थिक-पारिवारिक समस्याएं होती हैं, उनके रहते वे अपने "देह" को भुनाने पर विवश हो जाती हैं । डा. अग्रवाल ने स्वयं इसका उत्तर अपने उपर्युक्त कथन में दे दिया है । " लेकिन उसके पास (अर्थात् पुरुष के पास) भुनाने को देह नहीं । " यही कारण है कि पुरुष का दैहिक-शोषण नहीं हो रहा । उन्नत और विकसित समाज में कभी ऐसा हो भी सकता है । शैलेश मटियानी कृत "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई " में सेठानी नर्मदाबेन ऐसे ही पुरुषों को संस्थाओं के संचालक या स्कूलों के प्रिंसिपल बनाती हैं, जो उसकी यौन-संतुष्टि में सहायक हो सके । "पतझड़ की आवाजें " की अनुभा तथा सुनीता पुरुष की हवस का विरोध कर सकी हैं, क्योंकि उनके पास एक अदद नौकरी है और स्कील है । बम्बई जैसे महानगरों में टाईपिस्टों और स्टेनो की जरूरत प्रायः हर दफ्तर में रहती है । " रेस

की मछली " की कुंतल अभी संघर्ष के राह पर है, दूसरे उसके सामने अभी दूसरा रास्ता है। वह केवल अपने पिता की कही हुई बात के कारण उनके पास नहीं जा रही है। परंतु बात यदि अल्पास की ही आ जाए, तो वह अपने पिता के पास भी जा सकती है। अतः डा. रोहिणी अग्रवाल के अभिमत से पूर्णतया सहमत नहीं हो सकते। किसी भी स्वाभिमानी लड़की को अपने देह को माध्यम बनाना अच्छा नहीं लगता, पर पारिस्थितिक विवशताएँ कई बार उनसे वह सब करवाती हैं, जो उनकी आत्मा पर नागवार गुज़रती हैं।

कामकाजी महिला और यौन-उन्मुक्तता :

कामकाजी महिलाओं का कई बार यौन-शोषण होता है, यह एक वास्तविकता है; परन्तु एक वास्तविकता यह भी है कि आर्थिक निर्भरता के कारण महिलाओं में भी यौन-मुक्तता दृष्टिगत की जा सकती है। "वे दिन" की रायना ऐसी एक उन्मुक्त नारी है। वह नौकरी करती है। बेटे को बोर्डिंग में रखा है। पति-पत्नी में तलाक हो चुका है। ऐसी स्थिति में किसी मनचाहे साथी को ढूंढकर वह अपनी यौनेच्छा पूरी कर लेती है। जब छुट्टियों में या विकेण्ड पर वह किसी दूसरे शहर में जाती है, तब अपनी यह इच्छा वह किसी-न-किसी तरह संतुष्ट कर लेती है। वह प्रेम (यौन-संतुष्टि) को शरीर की एक अनिवार्य शर्त के रूप में ही लेती है। इस संबंध में वह नैतिकता-अनैतिकता के प्रश्न को बीच में नहीं लाती। अपने पार्टनर को यदि पछतावा न हो तो उसे इसमें कोई बुराई नहीं दिखती। वह कहती भी है —" मैं सिर्फ चाहती हूं कि दूसरे को बाद में पछतावा न हो ... दैन इट इज़ सिम्पल।" [35]

"टेराकोटा" की मिति भी यौन-मुक्तता में मानती है। पारिवारिक स्थितियों के कारण मिति विवाह नहीं कर सकती, क्योंकि उसके ऊपर पूरे परिवार की जिम्मेदारी है। पर वह घुट-

MEHTA LIBRARY ... of Baroda

घुट कर मरना भी नहीं चाहती । अतः किसी ऐसे युवक की तलाश में है जो उससे विवाह की माँग न करे , उसका "बॉय-फ्रेंड" बनकर रहे । दिल्ली में प्रमेश रोहित के साथ की उसकी दोस्ती इसी प्रकार की है । उसकी सहेली जया उसे एक डिनर-पार्टी में आमंत्रित करती है । उस संदर्भ में वह कहती है —" अगर मैं रोहित की पत्नी बनकर उसके लिए खाना बना सकती हूँ तो क्या वह मेरी सहेली की खातिर एक डिनर में मेरा पति नहीं बन सकता ।" [36]

"रुकोगी नहीं राधिका " की राधिका भी एक यौन-उन्मुक्त नारी है । अपने पिता को आघात देने के लिए वह विदेशी पत्रकार डेनियल पिटरसन के साथ भाग जाती है । परंतु डेन के साथ भी वह स्थिर नहीं रह पाती । विदेश में अनेक यायावरी "प्लेबॉय " टाईप के युवकों से परिचित होती है । मनीष भी उनमें से एक है । मनीष के जीवन में विजया , नयनतारा , कैरिन जैसी अनेक लड़कियाँ आ चुकी हैं । राधिका भी उनमें से एक है ।

"रेखा" उपन्यास की रेखा भी एक यौन-उन्मुक्त नारी है , परंतु उसकी इस यौन-मुक्तता के पीछे एक भटकाव है । युवावस्था में भावातिरेक में वह प्रोफेसर प्रभाशंकर से विवाह कर लेती है , परंतु शनैः शनैः ही अनुभव करती है कि उसके युवा प्रेमावेग को शांत करने की शक्ति प्रौढ़ प्रोफेसर में नहीं है । अतः अपनी यौन-तृप्ति के लिए वह नये-नये शिकार की खोज में रहती है । अतः एक के बाद छः पुरुष उसके जीवन में आते हैं — सोमेश्वर दयाल , शशि-कान्त , निरंजन कपूर , हितेन्द्र धीर , मेजर यशवंतसिंह और डा. योगेन्द्र मिश्र । पर इस यौन-भटकाव में उसका दाम्पत्य-जीवन तहस-नहस हो जाता है । प्रथम विचलन में उसे कुछ ग्लानि होती है , फिर तो यह बात उसके चरित्र का एक हिस्सा बन जाती है । किन्तु इसके कारण दोनों का जीवन दुःखमय हो जाता है ।

ऐसा भी देखा गया है कि यह यौन-मुक्तता नारी में शुरू से नहीं होती, परंतु प्रारंभ में प्रेम-वंचना के कारण जो भटकाव आता है, उसके कारण यह प्रवृत्ति किसी महिला में विकसित होती है। "डाक बंगला" की इरा के साथ ऐसा ही होता है। प्रेमी विमल उस पर शंका करके भाग जाता है। फिर उसके जीवन में मि. बतरा आता है, जो प्रेम करने का नाटक तो करता है, परंतु वस्तुतः उसे प्रेम नहीं करता। उसके जीवन में तो कई लड़कियाँ आ चुकी हैं। उसके लिए यह प्रेम नहीं तफरीह है। फलतः इरा का जीवन ही डाकबंगला के मानिंद हो जाता है।

रजनी पनिकर कृत "दो लड़कियाँ" की रंजना की यौन-मुक्तता उसकी पारिवारिक विवशता के कारण है। पिता के जीवित रहते हुए भी उनके सारे दायित्वों का वहन उसे करना पड़ता है। शादी-ब्याह करके गृहस्थी बसा नहीं सकती। ऐसा करने पर परिवार के लोग भूखों मर सकते हैं। अतः नौकरी करना उनकी एक मजबूरी होती है। परंतु सभी तो अनुभा और गनीमी नहीं हो सकती। दूसरे देह का ठण्डापन भी उनको बचाए रहता है। परंतु जहाँ शरीर की अपनी माँग हो, वहाँ क्या? ऐसी महिलाएं एक बीच का रास्ता निकालती हैं। दफ्तर में आते-जाते वे किसी ऐसे युवक से जुड़ना चाहती हैं जो विवाहित हो, क्योंकि अविवाहित व्यक्ति तो विवाह की बात कर सकता है। दूसरी ओर समाज में बहुत-से खाते-पीते वर्ग के पुरुष होते हैं, जिन्हें पत्नी के अतिरिक्त "कैप्ट" रखने का शौक होता है। प्रस्तुत उपन्यास का राजन एक ऐसा ही नायक है।" रंजना को जीवित रहने के लिए किसी पुरुष का साहचर्य अनिवार्य लगता है। वह जानती है कि विवाहित राजन के लिए वह "एकान्त की सहचरी" मात्र है, उसके हृदय-क्षेत्र में प्रवेश पाना उसके लिए संभव नहीं। फिर भी एकान्त के क्षणों में विराट से विराटतर होते चले जाने वाले भय और संत्रास से मुक्ति पाने के लिए उसे राजन की घनिष्ठ बाहों का सहारा चाहिए, राजन की बाहों में खोकर

दीन-दुनिया के दुःखों को भूल जाने का बहाना चाहिए ।" [37]

"नावें " की मालती की भी यही मजबूरी है । उसके ऊपर भी पूरे परिवार का बोझ है । मालती शिक्षित है, सुंदर है । चाहे तो विवाह कर सकती है । परंतु उसकी मजबूरी भी "दो लड़कियाँ" की की रंजना और " बचपन की लाल दीवारें " की सुषमा तथा "छाया मत छूना मन " की वसुधा जैसी है । परंतु जहाँ सुषमा और वसुधा में यौनेच्छा की कमी है, वहाँ मालती में रंजना की तरह शरीर की माँग है । अतः वह अपनी फर्म के मालिक सोमजी से संबंध जोड़ती है । सोमजी "नगरवधू हँसता है " के परमेश्वरी, "उसका घर " के मि. आहूजा", " पतझड़ की आवाजें " के सी.के. जैसे नहीं हैं, तथापि स्त्री के नैतिक शोषण में वे भी कहीं पीछे नहीं हैं । हाँ, उनका रवैया शालीनता की खोल को ओढ़े रहता है । दूसरे सोमजी के साहित्यिक व्यक्तित्व एवं विद्वता से स्वयं मालती भी आकृष्ट होती है और अपने शुष्क जीवन की एकरसता को तोड़ने के लिए सोमजी की बाहों का सहारा अंगीकृत करती है । सोमजी का सान्निध्य उसे अच्छा लगता है और उनकी सहायिका के रूप में वह ख्याति भी अर्जित करना चाहती है । [38]

परंतु इस यौन-उन्मुक्तता का एक दूसरा आयाम भी है, जहाँ यौन-मुक्त नारी ऊँचे पद, ऊँची हैसियत, ऊँचा वेतन पाने के लिए अपने देह को माध्यम बनाती है । "पतझड़ की आवाजें " की उषा इस प्रकार की महिला है । अनुभा और सुशीला उससे अधिक योग्य है । पर वे आफिस के बॉस की माँग के सामने नहीं झुकती । दूसरी ओर उषा इसे एक सुनहरा मौका समझकर स्वीकार कर लेती है । अतः सी.के. उसे अपनी प्राइवेट सेक्रेटरी बना देता है । वह "मान" और कुर्सी पाने के लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार रहती है । अधिकारी इनके निकट सफलता की सीढ़ी के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता । "चिड़ियाघर " ‖ गिरिराज

किशोर " की मिसेज रिजवी भी इसी प्रकार की महिला है । मिसेज रिजवी का तो स्पष्ट सिद्धान्त है कि आराम से नौकरी करने के लिए अफसर को कब्जे में रखना चाहिए । मिसेज रिजवी की दृष्टि में कुर्सी तथा कुर्सी पर आसीन अधिकारी ही महत्त्वपूर्ण है । कुर्सी से हटकर उस अधिकारी का कोई मूल्य नहीं है । अपनी आफिस के बॉस स्मिथ साहब से वह निकटता स्थापित करती है , क्योंकि ऐसी निकटता नौकरी की परेशानियों और तनावों को दूर करती हैं । फिर वे समस्याएं बॉस की हो जाती हैं । अपनी समस्याओं को सुलझाने की माथापच्ची करने के बदले बॉस को ही उनमें उलझाये रखना अधिक फायदेमन्द है । मिसेज रिजवी का दूसरा सिद्धान्त है कि आराम से नौकरी करनी हो तो अफसर को बेवकूफ बनाओ या स्वयं बेवकूफ बनो । मिसेज रिजवी स्वयं बेवकूफ बनकर वास्तव में मि. स्मिथ को ही बेवकूफ बनाती है । किसी कल्पित प्रभावशाली व्यक्ति से उसके बड़े अच्छे संबंध हैं और उसके जरिये वह मि. स्मिथ का [illegible] फायदा करा सकती है , ऐसी बातें करके वह मि. स्मिथ को अपने जाल में फांस लेती है । मि. स्मिथ के साथ के मधुर संबंधों के कारण ही अकुशल कर्मचारी होते हुए भी मि. स्मिथ उसके बढ़िया सी.आर. (कोन्फीडेन्शियल रिपोर्ट) लिखते हैं और इस प्रकार अयोग्य और अकुशल होते हुए भी मिसेज रिजवी स्वयं अधिकारी की कुर्सी को हथिया लेती है ।

"अग्निगर्भा" की कु. प्रमिला सरीन भी "कैरियर " की अंधी दौड़ में आगे निकल जाने के लिए अपने देह को भुनाती है । कालेज की प्राचार्या के पति को अपने मोहजाल में फंसाकर वह विभागाध्यक्ष हो जाती है और पूरे ठाठ तथा शानो-शौकत के साथ कालेज कैम्पस में घूमती रहती है ।[39] ठीक ऐसे ही कूटनीतिक - व्यावसायिक संबंधों के जरिये " अन्धेरे बन्द कमरे " की शुक्ला अपने पिता के लिए करनाल में नया मकान बनवाती है ।[40]

महीपसिंह द्वारा प्रणीत " यह भी नहीं " की शान्ता भी अत्यन्त महत्वाकांक्षी महिला है और अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए वह भी देह को माध्यम बनाती है । शान्ता की मान्यता है कि सफलता तक पहुंचने का मार्ग जिस्म से होकर गुजरता है । इसके लिए वह धनकुबेर सेठ प्रीतमलाल को फांसती है । सेठ प्रीतमलाल के अनेक होटल और रेस्टोरां हैं । उनकी योजना है फिलहाल लंदन में कोई भारतीय रेस्टोरां खोला जाय । शान्ता की नजर उस पर है । अतः अपनी समस्त वितृष्णा के बावजूद वह उसकी बाहों में समा जाने के लिए आतुर हो जाती है । [5]

अविवाहित रहने के लिए अभिशप्त कामकाजी महिला :

महानगरीय परिवेश में कई उपन्यासों में हमें कई ऐसी कामकाजी महिलाएं मिलती हैं अविवाहित रहने के लिए अभिशप्त हैं । उनके मन में दाम्पत्य-जीवन की अदम्य लालसा होती है , परन्तु अपने पारिवारिक-आर्थिक कारणों से वे विवाह नहीं कर सकतीं । उनकी परिवार-प्रतिबद्धता उन्हें ऐसा करने से रोकती है । अतः अपना घर बसाने की अदम्य इच्छा होने के बावजूद वे आत्म-बलिदान का रास्ता अख्तियार करती हैं । घुट-घुट कर और तिल-तिल कर मरती हैं , पर उनका दायित्व-बोध उन्हें विचलित नहीं होने देता । "पचपन खंभे लाल दीवारें " की सुषमा , "डाक्टर मत छूना मन " की शुभ्रा , " टेराकोटा" की मिलि , "नावें " की मालती , " दो लड़कियां" की रंजना , " बंटता हुआ आदमी " की सुनंदा आदि ऐसी महिलाएं हैं जो अपनी परिवार-प्रतिबद्धता में अपने वैयक्तिक सपनों का गला घोंटती हैं । इनमें मिलि , मालती , रंजना आदि महिलाएं अपने देह-धर्म की पूर्ति हेतु बीच का रास्ता निकाल लेती हैं ; परंतु सुषमा , सुधा जैसी कुछ लड़कियां अपने देह-धर्म की भी उपेक्षा

करती हैं । आगे चलकर ऐसी महिलाओं के कुण्ठाग्रस्त हो जाने का एक भय-स्थान बना रहता है । घर-परिवार के लोग — माता-पिता काल-कवलित हो जाते हैं, भाई-बहन पढ़-लिखकर अपने नौकरी-व्यवसाय में "सैट" हो जाते हैं, शादी-ब्याह करके अपना संसार बसा लेते हैं और तब रह जाती है वह महिला अकेली और हारी हुई । परिवार वालों के स्वार्थ को वह पहचानने लगती है, परन्तु तब तक तो बहुत देर हो चुकी होती है ।

स्वेच्छा से अविवाह का वरण करने वाली कामकाजी महिलाएं :

पहले नारी का विवाह करना अत्यन्त आवश्यक माना जाता था । बहुत कम नारियाँ अविवाहित रह जाती थीं । आर्थिक विवशताओं में, बूढ़ों से, दुहाजू-तिहाजू से, ब्याह दी जाती थीं; किन्तु लड़की को एक उम्र के बाद अविवाहित रखना सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से अनुचित माना जाता था । शास्त्रों में तो उसे पाप करार दिया जाता था और जो पिता या भाई अपनी कन्या या बहन की शादी नहीं करा सकते थे वे नरक में जायेंगे ऐसा शास्त्र-विधान था । वे नरक में जाते होंगे या नहीं, पता नहीं, पर जीते जी समाज के नरक की भट्ठी में तो जलते ही रहते थे । समाज के लोग उन्हें चैन से जीने नहीं देते थे । परंतु अब नगरों और महानगरों में स्थितियां बदल रही हैं । अब लड़कियां पढ़-लिखकर नौकरी करने लगी हैं । कई बार तो ऐसा भी देखा गया कि स्वयं माँ-बाप या परिवार वाले नहीं चाहते कि लड़की विवाह करे, क्योंकि ऐसी स्थिति में उसकी आय से हाथ धोना पड़ सकता है । बहुत पहले मालती जोशी की एक कहानी "फ्रीटन का पौधा" नाम से धर्मयुग में प्रकाशित हुई थी, उसमें इन्हीं स्थितियों को रेखांकित किया गया है । [42]

पहले किसी लड़की का अविवाहित रहना उसके अभिभावकों को इसलिए भी खलता था कि उसमें उनकी इज्जत के लुट जाने का खतरा बना रहता था । मां-बाप सोचते थे कि कहीं कुछ ऊंच-नीच हो जायेगा तो समाज में किसीको मुंह दिखाने के काबिल नहीं रह जायेंगे । "रतिनाथ की चाची" , " काला जल " , "धरती धन न अपना " जैसे उपन्यासों में ऐसे किस्से मिलते हैं , जहां किसी महिला के गर्भवती हो जाने से सामाजिक-लांछना को उठाना पड़ता है । रतिनाथ की चाची विधवा थी और उसे अपने ही जेठ से हमल रह गया था । डा. रामदरश मिश्र के उपन्यास " सूखता हुआ तालाब" में भी ऐसे कई किस्से मिलते हैं । परंतु महानगरीय परिवेश में व्यक्ति अब वतनगत या जातिगत पहचान खोता जा रहा है । व्यक्तिवादी चिंतन ने सामाजिक दबावों को कम किया है । महानगरीयxxxxxx व्यक्ति अब समाज की ज्यादा परवाह नहीं करता । दूसरे अब वैज्ञानिक संसाधनों एवं उपकरणों के कारण गर्भ-धारण का वैसा खतरा भी नहीं रहा । अवांछित गर्भ को रोका जा सकता है । दूसरे अब गर्भपात को कानूनी रूप दिया गया है । अब गर्भपात अपराध नहीं है । अतः यदि किन्हीं कारणों से किसीको गर्भ ठहर भी जाय तो वह नाजायज नहीं है । दूसरे अब स्त्रियों को कानून द्वारा यह अधिकार भी मिला है कि अविवाहित रहकर भी वे बच्चे को जन्म दे सकती हैं । "मुझे चाँद चाहिए " की वर्षा वशिष्ठ अविवाहित माँ है । "नाईं" की मालती को न चाहते हुए भी विजयेश से विवाह करना पड़ता है , क्योंकि पुत्री नीलिमा को स्कूल में दाखिला दिलाने के लिए पिता का नाम चाहिए । अब यह कानूनी दिक्कत भी समाप्त हो गई है । शिशु के पीछे माँ का नाम भी लगता है । हमारी युनिवर्सिटी में प्रवेश हेतु जो फोर्म्स भरे जाते हैं , उनके कालम अब इस प्रकार से बने हैं कि कोई चाहे तो अपने पीछे अपनी माँ का नाम भी लिख सकता है । सुप्रसिद्ध फिल्म दिग्दर्शक संजय लीला भणसाली जिसने "खामोशी" , " देव-

जात ", " हम दिल दे चुके सनम " जैसी सफल फ़िल्में बनायी हैं । लीला शयलानी उनकी माँ का नाम हैं । एक और पक्ष भी है । महिलाएँ , अविवाहित महिलाएँ , अब चाहें तो बच्चे को कानूनी तौर पर गोद ले सकती हैं । सुप्रसिद्ध फ़िल्म अभिनेत्री और ब्रह्मांड सुंदरी [मिस युनिवर्स] सुस्मिता सेन तथा रवीना टंडन ने [illegible] लड़कियों को गोद लिया है ।

परिणामतः लड़की के ब्याह की यह अनिवार्यता अब समाप्त हो गई है । यद्यपि इस प्रकार के किस्से अभी छुटके-छुटके दृष्टिगत होते हैं , किन्तु कालान्तर में ये बातें सर्व-सामान्य हो सकती हैं । " ये दिन" की रायना हालांकि पति-परित्यक्ता है , किन्तु वह सुंदर है , स्मार्ट है , कमाती-धमाती है , अतः चाहे तो आसानी से विवाह कर सकती है । परंतु अब उसे अविवाहित ज़िन्दगी रास आ गई है । वह फिर से उस "झंझट" में पड़ना नहीं चाहती । "बेताशियोंवाली इमारतें " की हिन्दी की प्राध्यापिका मिस. जायसवाल भी विवाह को एक फालतू खुराफात ही मानती है । अपने नौकरी करती है । कमाती है , ठाठ से रहती है । रही शरीर-धर्म की मांग तो उसे भी अपने मनचाहे ढंग से पूरा कर लेती है । इसलिए वह विवाहित पुरुषों से ही शरीर-संबंध बांधती है । अविवाहित पुरुष शादी की बात कर सकता है । "दो लड़कियाँ" की रंजना भी विवाहित पुरुषों से संबंध रखने में मानती है । " मुझे चाँद चाहिए " की वर्षा वशिष्ठ अविवाहित माँ बनती है । यद्यपि उसके पीछे अलग प्रेम-प्रकरण है । उसका प्रेमी अपने फ्रस्ट्रेशन में आत्महत्या कर लेता है । उसीसे वर्षा को यह गर्भ रहा था । अतः उसकी याद के साथ वह शेष जीवन व्यतीत करना चाहती है । महानगरीय परिवेश में अब एक दूसरा आयाम भी विकसित हो रहा है । पहले केवल स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति का व्यवसाय करती थीं । अब महानगरों में

"मेल-प्रोस्टिट्यूट " भी मिलने लगे हैं । कुछ लोग सेक्रेटरी सहायिका या ऐसे ही किसी नाम से पुरुष-वेश्यागिरी का काम करते हैं । "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई " में सेठानी नर्मदाबेन अपनी यौन-संतुष्टि के लिए मि. खन्ना नामक एक व्यक्ति को "हायर " करती है और एक होटल में कमरा बुक करवाती है । [43]

कामकाजी महिला : विवाहेतर संबंध :

कामकाजी महिला अपने देह-धर्म की पूर्ति हेतु , अविवाहित रह जाने की या रहने की मजबूरी में , पर-पुरुष से संबंध रखती है , उसे एक बार मानवीय करार दिया जा सकता है ; परंतु बहुत-सी कामकाजी महिलाएं विवाहित होते हुए भी पर-पुरुष , अधिकांशतः विवाहित , के साथ संबंध बांधती है , उसके पीछे कई कारण हैं ।

जहाँ पर अपने बॉस के साथ संबंध जोड़ा जाता है । उसके पीछे नौकरी में सहूलियत , ऊँचे पद की आशा , आर्थिक लाभ की आशा इत्यादि कारण होते हैं । " पतझड़ की आवाजें " की उषा , "चिड़ियाघर " की मिसेज रिज़वी , "वह भी नहीं " की शान्ता आदि इसके उदाहरण हैं ।

कभी-कभी पति-पत्नी में रुचि-वैभिन्य , शीत-संबंध आदि के कारण कामकाजी महिला विवाहेतर पर-पुरुष संबंध बांधती है । "अकेला पलाश" की तहमीना पति जमशेद से मानसिक व दैहिक दोनों दृष्टियों से असंतुष्ट है । वह अधिकारी के पद पर कार्यरत है । उसकी कई सारी व्यस्तताएं होती हैं । परंतु जमशेद फिर भी चाहता है कि तहमीना गृहिणी के सारे काम भी करे । दौरे से देर रात लौटी तहमीना से वह अपेक्षा करता है कि वह अपनी तमाम थकान को भुलाकर उसके लिए गरमागरम खाना बनाए । तहमीना बहुत थकी हुई है । अतः जैसे-तैसे खिचड़ी बनाती है । इस बात को लेकर भी घर में झगड़ा होता है । [44]

इस प्रकार पति जमशेद भयंकर रूप से अहंवादी तथा अनुदार है । फलतः उनका दाम्पत्य-जीवन सुखी और प्रसन्न नहीं है । तन-मन का यह वैभिन्न्य तहमीना को विवाहेतर संबंधों की ओर अग्रसरित करता है । कुमार के साहचर्य में वह पहली बार स्वयं को तृप्त पाती है । "इसके विपरीत कुमार का प्रेम, वस्तुतः प्रेम नहीं आकर्षण है । अपनी उकताहट को "लोकनिंदा" की आड़ में छिपाकर वह तहमीना से सम्बन्ध तोड़ लेता है । तब तिरस्कृत अपमानित तहमीना को लगता है कि वह ऐसा वृक्ष है जो सिर्फ दूसरों को सहारा देता है । ... पर उसे वृक्ष को कोई सहारा नहीं है ।" 45

कामकाजी महिला : "अहं" /ईगो/ का प्रश्न :

पहले स्त्री अधिक शिक्षित नहीं थी । अतः उस पर चाहे जितने भी जुल्म हों, बरदाश्त कर लेती थी । परंतु अब स्त्री भी पढ़ने-लिखने लगी है । पढ़-लिखकर वह भी नौकरी-धंधा करने लगी है । अतः कोई पुरुष जब उसके ठेस पहुंचाता है, उसे दबाने की चेष्टा करता है, उसके आत्म-सम्मान को, उसके "ईगो" को ठेस पहुंचती है और वह अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती है ।

"आपका बण्टी" की शकुन की भी यही समस्या है । वह एक कालिज में आचार्य है । वहां कई लोग उसके हुक्म में रहते हैं । परंतु अजय के लिए तो वही शकुन है । दूसरे अजय का स्वभाव भी अधिक "पजेसिव" है । अतः वह शकुन को दबाना चाहता है । शकुन का "ईगो" यह बरदाश्त नहीं कर सकता । फलतः उनमें लड़ाई-झगड़े शुरू हो जाते हैं, जो अन्ततः विवाह-विच्छेद में परिणत होता है । वस्तुतः शकुन में क्रिया नहीं, स्वस्थ क्रिया नहीं, प्रतिक्रिया होती है । प्रत्येक बार वह अजय को दिखा देना चाहती है । डा. जोशी से उसका विवाह भी इसी प्रवृत्ति का द्योतक है ।

"अन्धेरे बन्द कमरे" में भी नीलिमा और हरबंस का दाम्पत्य सहज नहीं रह पाता, उसका कारण दोनों के "अहं" की टकराहट है। वस्तुतः हरबंस का पुरुष-ईगो यह बरदाश्त नहीं कर पाता कि नीलिमा उससे आगे निकल जाय। अतः जब किसी क्षेत्र में वह स्थान बनाने लगती है, तब हरबंस किनारा कर लेता है। हरबंस नहीं चाहता कि लोग उसे नीलिमा के पति के रूप में जानें। नीलिमा के नृत्य-प्रदर्शन में हरबंस का असहयोग उसका प्रमाण है। हरबंस एक तरफ तो आधुनिक होने का दम भरता है, पर दूसरी तरफ उसमें मध्यकालीन पुरुष बैठा हुआ है, जो उसे सहज नहीं रहने देता।

"मुझे चाँद चाहिए" का हर्ष शाहजहाँपुर से आयी हुई वर्षा की हर तरह से सहायता करता है। उसमें आत्म-विश्वास पैदा करता है। हर्ष की ख्याति एन.एस.डी. में एक बहुत अच्छे अभिनेता के रूप में है। लोग उसे कालिगुला कहते हैं। हर्ष और वर्षा में प्रेम होता है। दिल्ली से बम्बई आने पर कलागत मूल्यों के साथ समझौता न कर पाने के कारण हर्ष को असफलता का मुँह देखना पड़ता है, दूसरी ओर अपनी स्त्री-सहज व्यावहारिकता और वाक्चातुर्य के कारण वर्षा एक के बाद एक सफलता के शिखरों को सर करती जाती है। हर्ष का "ईगो" इसे पचा नहीं पाता। फलतः वह आत्महत्या कर लेता है।

"अकेला पलाश" के जमशेद और तहमीना का दाम्पत्य-जीवन भी जो असहज है, उसके पीछे भी दोनों के "ईगो" की टकराहट है। तहमीना आफिसर है। अपने पद के कारण उसे प्रायः दौरों पर जाना पड़ता है। तब देर-अबेर भी हो जाती है। कोई समझदार पति होता तो पत्नी को इसमें सहयोग करता, किन्तु जमशेद भयंकर रूप से अहंवादी है। वह हर हालत में चाहता है कि तहमीना उसकी सेवा बिलकुल उस तरह करे जैसे कोई गृहिणी करती है। जब कोई महिला नौकरी करती है, और विशेषकर ऊँचे

पद पर होती है तो तत्क्षण के लिए एकदम तैयार नहीं होती । इस प्रकार की तत्परता या उत्कटता जताना कदाचित् उसके "अहं" के विपरीत होता है । कई बार उसमें शारीरिक-मानसिक थकावट भी होती है । अतः रति-क्रीड़ा में अनिच्छा जाहिर करना कई बार उसकी विवशता होती है । परंतु परंपरित परिवेशयुक्त पतिदेव उसका दूसरा अर्थ लगाते हैं । "अकेला पलाश" के जमशेद तथा " ठेकर" का परमजीत इसके उदाहरण हैं । उन्हें पत्नी के चरित्र पर संशय होने लगता है । इस संदर्भ में डा. रमेश कुंतल मेघ के विचार ध्यातव्य रहेंगे — " कामकाजी पत्नी तत्काल समर्पण को व्यक्तित्व की चुनौती समझती है, अपने अस्तित्व को अर्थहीन समझती है । इस तरह पत्नी की सेक्स-सम्भोग के प्रति उदासीनता और विश्वासघात दाम्पत्य-जीवन के समंजन को बर्बाद कर देते हैं ।" 46

कामकाजी महिला और रूढ़िमुक्तता :

पहले निम्नवर्ग में तो महिलाएं कामकाजी होती थीं, पर मध्यवर्ग और उच्चवर्ग में कामकाजी महिलाओं का अभाव था । किन्तु पिछले सौ-डेढ़ सौ वर्षों में नारी-शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ अनेक सामाजिक समीकरण बदल गए हैं । जब स्त्री शिक्षित नहीं थी, नौकरी नहीं करती थी, अर्थोपार्जन में उसका कोई प्रत्यक्ष योग नहीं था ; तब अनेक सामाजिक परंपराओं और रूढ़ियों के दायरों में वह कैद थी । परन्तु अब जब वह नौकरी करने लगी है, घर की चहार-दीवारी से बाहर निकली है, अर्थोपार्जन में उसका महत्त्वपूर्ण योगदान बढ़ने लगा है ; तब वह उन पुराने दायरों के बाहर निकल रही है । महानगरों का वातावरण वैसे भी उन्मुक्त जीवन-शैली के अधिक अनुरूप होता है । अतः महानगरीय परिवेश की कामकाजी महिलाओं में ऐसी महिलाओं का अनुपात बढ़ रहा है, जो शनैः शनैः रूढ़िमुक्तता की ओर प्रवृत्त हो रही है ।

उषा प्रियंवदा के प्रथम उपन्यास " पचपन खंभे लाल दीवारें " की नायिका सुषमा तो रूढ़िमुक्त नहीं है, किन्तु उनके दूसरे उपन्यास "रुकोगी नहीं राधिका " की राधिका रूढ़िमुक्त है । वह अपने पिता या घर-परिवार को बताये बिना डैनियल फिटरसन के साथ विदेश भाग जाती है । विदेश में भी वह उन्मुक्त प्रकार का जीवन व्यतीत करती है । डैन से भी अलग हो जाती है । विदेश से लौटने के उपरांत उसके पिता चाहते हैं कि उसके जीवन में कुछ स्थिरता आवे । इस उद्देश्य उसे अपने साथ रहने के लिए कहते हैं, तब पिता को पुनः आघात देने के लिए वह मनीष के साथ दक्षिण भारत की यात्रा पर निकल पड़ती है । अतः स्वैर-विहार तथा वैयक्तिक उन्मुक्तता में जीने वाली राधिका अपने वैयक्तिक स्तर पर रूढ़िमुक्त दृष्टिगत होती है, परन्तु वहीं दूसरे स्तर पर उसमें भारतीय-परंपरा के प्रति सुदृढ़ता भी दृष्टिगोचर हो रही है । उसके पिता जब प्रौढ़ावस्था में विद्या नामक एक प्रौढ़ महिला से विवाह कर लेते हैं, तब सबसे अधिक कठोर और क्रूर प्रतिक्रिया भी राधिका की ही होती है । उसके पिता युवावस्था में विधुर हो गये थे । पर तब बच्चों का ख्याल करके उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया था । अतः बच्चे जब युवा हो जाते हैं, तब वे अपनी एक समानधर्मा महिला से विवाह कर लेते हैं । राधिका में यदि पूर्णरूपेण रूढ़िमुक्तता होती तो इस घटना को वह स्वस्थता के साथ लेती । उसका सही विश्लेषण करते हुए डैन कहता है : " माँ के मरने के बाद तुम्हारा पिता के प्रति लगाव कुछ एब्नॉर्मल हो गया । यदि भारतीय परिवेश में तुम्हें प्रारंभ से ही युवा-मित्र बनाने की सुविधा होती तो ऐसा नहीं होता । तब तुम्हें प्रसन्नता होती कि तुम्हारे पिता ने जीवन में फिर सुख पाया । "[47] परन्तु राधिका की आधुनिकता भी "अंधेरे बन्द कमरे " के हरबंस की भाँति आधी-अधूरी ही है । कुछ मामलों में वह रूढ़िमुक्त है और कुछ मामलों में रूढ़िग्रस्त ।

यहाँ एक तथ्य और गौरतलब होना चाहिए कि रूढ़िमुक्तता से हमारा तात्पर्य क्या है ? अपने वैयक्तिक फायदों के लिए देह को भुनाने वाली महिला को क्या रूढ़िमुक्त कहा जा सकता है ? वह तो एक प्रकार की "सोफिस्टीकेटेड" वेश्यावृत्ति ही है । उसमें और कालगर्ल में कोई खास बुनियादी अन्तर नहीं है । कालगर्ल का वह फुलटाईम व्यवसाय होता है, और ऐसी कामकाजी महिला का पार्टटाईम । अतः कहा जा सकता है कि "चिड़ियाघर" की मिसेज़ रिज़वी या "पतझड़ की आवाज़ें" की उषा को इन अर्थों में रूढ़िमुक्त नहीं कहा जा सकता । डा. राजरानी शर्मा ने उषा, शान्ता (यह भी नहीं), कल्याणी (मछली मरी हुई) आदि महिलाओं को रूढ़िमुक्त की कोटि में रखा है,[40] जिसे इस दृष्टि से अनुपयुक्त कहा जा सकता है ।

जो महिला पूर्व-स्थापित सामाजिक-नैतिक मूल्यों के बरअक्स दूसरे स्वतंत्र मूल्य रखती है, उसे ही रूढ़िमुक्त कहा जायेगा । "वे दिन" की रायना को इन अर्थों में रूढ़िमुक्त कहा जा सकता है, क्योंकि परंपरागत विवाह-संस्था को ललकारते हुए वह उसके विकल्प को सामने रखती है और ऐसा वह पद या पैसों के लिए नहीं करती । बल्कि एक नया मूल्य स्थापित करती है । अब तक पुरुष स्त्री को भोगता था, यहाँ एक स्त्री पुरुष को भोगती है । "छ टेराकोटा" की मिति भी इन अर्थों में रूढ़िमुक्त है, क्योंकि वह अविवाहित रहती है, कुंवारी नहीं । परंतु अपने महानगरीय परिवेश में अल्ट्र× अल्ट्रा मोडर्न दिखाई पड़ने वाली मिति अपने पारिवारिक कस्बाई परिवेश में बहुत ही रूढ़िग्रस्त दिखती है । जब वह अपनी बहन उमा का विवाह डा. नरेश से करवाती है तब वह उमा को एक "ट्रेडिशनल ब्राइड" के रूप में देखना चाहती है और विवाह के तमाम विधि-विधानों का पूरा ख्याल रखती है । इसका मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि परंपरित वैवाहिक जीवन बिताने में असमर्थ मिति उसकी पूर्ति अपनी बहन उमा में कर लेना चाहती है ।

मैत्रेयी पुष्पा कृत " इदन्नमम" की मन्दा जो हम रूढ़िमुक्त कह सकते हैं, किन्तु वह हमारे आलोच्य उपन्यासों की सीमा में नहीं आती, क्योंकि उसका परिवेश ग्राम्य है, यहाँ केवल महानगरीय परिवेश से हम सम्बद्ध हैं। सुरेन्द्र वर्मा कृत "मुझे चाँद चाहिए " की वर्षा वशिष्ठ भी इन अर्थों में रूढ़िमुक्त है। अपने सड़े परंपरित समाज को ललकारते हुए वह नये मूल्यों को सामने रखती है। फिल्म अभिनेत्री नीना गुप्ता की भाँति कुँवारी माँ के आह्वान को भी बहादुरीपूर्वक अंगीकृत करती है।

"सूरजमुखी अँधेरे के " की रत्ती, "बैसाखियोंवाली इमारतें" की मिस जायसवाल, "नावें " की मालती, " दो लड़कियाँ " की रंजना, "तत्सम्" की वसुधा, "चित्तकोबरा" की मनु, "उसके हिस्से की धूप " की मनीषा, "काली आँधी" की मालती, "प्रेम अप्रतिम नदी" की शिवानी, "मुझे चाँद चाहिए " की दिव्या कात्यान, "अकेला पलाश " की तहमीना आदि नारी-पात्रों को हम रूढ़िमुक्त महिलाओं की श्रेणी में रख सकते हैं।

कामकाजी महिला : कार्य-प्रतिबद्धता :

महानगरीय परिवेश में कामकाजी महिलाओं का अनुपात दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है, तब उससे जुड़ा एक सवाल यह भी उठता है कि क्या ये कामकाजी महिलाएँ अपने कार्य के प्रति प्रतिबद्ध हैं? या फिर तफरीह, मौज-मजा, आर्थिक-स्वतंत्रता के लिए ही वे नौकरी या व्यवसाय करती हैं ? यहाँ दोनों प्रकार की कोटियाँ मिलती हैं। जहाँ उषा (पतझड़ की आवाजें), मिसेज रिज़वी (चिड़ियाघर), मिस चालीवाला (टेराकोटा), मिस जायसवाल (बैसाखियोंवाली इमारतें), मन्डी स्कूल की अध्यापिकाएं (अन्तराल), कुसुमा (कड़ियाँ), शीला (डाक बंगला) जैसी कुछ कामकाजी महिलाएं अपने कार्य के प्रति उत्तरदायी नहीं हैं; वहाँ अपने कार्यक्षेत्र के प्रति संपूर्ण ईमानदारी

प्रतिबद्धता परखने वाली निष्ठावान कामकाजी महिलाएं भी उपलब्ध होती हैं । ऐसी निष्ठावान कार्य-प्रतिबद्ध महिलाओं में सीता गुप्ता (नरक-दर-नरक), संजीवनी (नरक-दर-नरक), अनुभा, कुनिका (पतझड़ की आवाजें), मिति (टेराकोटा), तहमीना (अकेला पलाश), वसुधा (तत्सम), मनीषा (उसके हिस्से की धूप), रायना (वे दिन), सुषमा (पचपन खंभे लाल दीवारें), वर्षा वशिष्ठ (मुझे चाँद चाहिए), नीलिमा (अंधेरे बन्द कमरे), दिव्या कात्याल (मुझे चाँद चाहिए), प्रिया (छिन्नमस्ता) आदि की परिगणना कर सकते हैं । इनकी चर्चा पूर्ववर्ती पृष्ठों में एकाधिक बार हो चुकी है, अतः यहां पुनरावृत्ति करना उचित नहीं लगता है ।

निष्कर्ष :
=====

अध्याय के समग्राकलन पर आधारित निष्कर्ष नीचे प्रस्तुत किए जा रहे हैं :--

(1) उन महिलाओं को कामकाजी कहा जा सकता है कि जो अर्थोपार्जन हेतु उत्पादक बौद्धिक या शारीरिक श्रम करती है ।

(2) कामकाजी महिलाओं का श्रेणी-विभाजन तीन कोटियों में कर सकते हैं -- उच्चवर्ग, मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग । निम्नवर्ग में निम्नवर्ग और अति-निम्नवर्ग ऐसी दो श्रेणियाँ मिलती हैं ।

(3) अधिकांशतः देखा गया है कि कामकाजी महिलाओं को दोहरे उत्तरदायित्व का वहन करना पड़ता है और इस प्रकार उनका शारीरिक और मानसिक शोषण होता है ।

(4) कामकाजी महिलाओं का दैहिक शोषण भी किया जाता है । प्रथमवर्ग में यह प्रवृत्ति कम दृष्टिगोचर होती है, परंतु मध्यवर्ग और निम्नवर्ग में इस प्रकार के शोषण का अनुपात अधिक पाया जाता है । कहीं-कहीं यह शोषण महिलाओं के परिवारजनों के कारण है । कहीं-कहीं स्वयं महिलाएं भी वैयक्तिक स्वार्थों की पूर्ति हेतु इस शोषण को बढ़ावा देती हैं ।

(5) कामकाजी महिलाओं में महानगरीय परिवेश के अनुकूलन के कारण यौन-मुक्तता के भी कहीं-कहीं दर्शन होते हैं। उक्त यौन-मुक्तता के कई कारण हैं।

(6) कामकाजी महिलाओं में कई महिलाएं ऐसी भी मिलती हैं जो अपने पारिवारिक-आर्थिक कारणों से अविवाहित रहने के लिए अभिशप्त हैं। इनमें से कुछ जीवन का मार्ग तलाश लेती हैं, पर अनेक घुटन और संत्रास की असह्य स्थितियों से गुजरती हैं।

(7) कामकाजी महिलाओं में कहीं-कहीं विवाहेतर संबंध भी मिलते हैं। इसमें कहीं व्यक्तिगत वैभिन्य के कारण कहीं पति से असंतुष्टि कारणभूत है तो कहीं महिला अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए इस प्रकार के संबंधों की ओर उन्मुख होती है।

(8) कामकाजी महिलाओं के संदर्भ में पति-पत्नी के "ईगो" के कारण दाम्पत्य-जीवन को कई उतार रहते हैं।

(9) महानगरीय परिवेश तथा नवीन वैचारिक प्रभावों के कारण कामकाजी महिलाओं में रूढ़िमुक्तता का परिमाण बढ़ता जा रहा है।

(10) कामकाजी महिलाओं में जहां एक तरफ कामचोर, चापलूस, अयोग्य और कार्य के प्रति अनिच्छावान महिलाएं पायी जाती हैं; वहां अति-[illegible] कार्यकुशल और निष्ठावान महिलाएं भी पायी जाती हैं। प्रथम वर्ग की महिलाएं प्रायः अपने देह को माध्यम बनाकर आगे बढ़ना चाहती हैं। दूसरे वर्ग की महिलाओं को प्रायः अन्याय बरदाश्त करना पड़ता है। परंतु उनमें नारी-अस्मिता के दर्शन होते हैं। ऐसी महिलाएं जुझारू और जीवटवाली होती हैं।

=====xxxxxx=======

§*§ :: सन्दर्भानुक्रम :: §*§

§1§ वुमन इन द ट्वेण्टीयथ सेन्चुरी वर्ल्ड : एलिस बोल्डिंग : पृ. 17

§2§ हिन्दी कहानी में नारी की सामाजिक भूमिका : डा. अनिल गोयल : पृ. 173 ।

§3§ स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक xxxxxxxxxxxx में विचार तत्व : डा. अवधेशचन्द्र गुप्त : पृ. 93 ।

§4§ द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यासों में कामकाजी महिला : डा. रोहिणी अग्रवाल : पृ. 56 ।

§5§ द्रष्टव्य : भारत की अग्रणी महिलाएं : डा. आशारानी व्होरा : राजपाल एण्ड सन्स प्रकाशन : पृ×

§6§ वही : पृ. 5 ।

§7§ द्रष्टव्य : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास तथा आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास : डा. पारुकान्त देसाई :

§8§ हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला : डा. रोहिणी अग्रवाल : पृ. 65 ।

§9§ आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूपों का चित्रण : डा. मोहम्मद अजहर ढेरीवाला : पृ. 224 ।

§10§ द्रष्टव्य : वही: पृ. 225 ।

§11§ अंधेरे बन्द कमरे : पृ. 172 ।

§12§ आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास : पृ. 80 ।

§13§ महाभोज : कहानी : भविष्य xx तथा अन्य कहानियाँ : शैलेश मटियानी : पृ. 100-101 ।

§14§ वही : पृ. 107 ।

§15§ नरक-दर-नरक : ममता कालिया : पृ. 187 ।

§16§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 188 ।

§17§ डाक बंगला : पृ. 27 ।

§18§ साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : पृ. 136 ।

{19} छाया मत छूना मन : हिमांशु जोशी : पृ. 56 ।

{20} पतझड़ की आवाजें : निरुपमा सेवती : पृ. 95 ।

{21} नगरपुत्र हँसता है : धर्मेन्द्र गुप्त : पृ. 56 ।

{22} पतझड़ की आवाजें : पृ. 52 ।

{23} वही : पृ. 53 ।

{24} वही : पृ. 63 ।

{25} आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास : पृ. 107 ।

{26} मानसमाला : डा. पारुकान्त देसाई : पृ.

{27} कुमारिकाएं : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 41 ।

{28} उद्धृत द्वारा : डा. पारुकान्त देसाई : आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास : पृ. 93 ।

{29} वही : पृ. 94 ।

{30} वही : पृ. 94 ।

{31} वही : पृ. 96 ।

{32} हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला : पृ. 107-108 ।

{33} बँटता हुआ आदमी : निरुपमा सेवती : पृ. 97 ।

{34} हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला : पृ. 210 ।

{35} वे दिन : पृ. 209 ।

{36} टेराकोटा : लक्ष्मीकान्त वर्मा : पृ. 81 ।

{37} आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास : पृ. 124 ।

{38} द्रष्टव्य : नावें : शशिप्रभा शास्त्री : पृ. 15 ।

{39} अग्निगर्भा : अमृतलाल नागर : पृ. 98 ।

{40} अँधेरे बन्द कमरे : पृ. 437 ।

{41} यह भी नहीं : महीपसिंह : पृ. 298 ।

{42} द्रष्टव्य : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : पृ. 128 ।

{43} शैलेश मटियानी का कथा साहित्य : शोध प्रबंध : डा. सलीम व्होरा : पृ. 97 ।

[44] अकेला पलाश : मेहरुन्निसा परवेज : पृ. 43 ।

[45] हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला : पृ. 239 ।

[46] क्योंकि समय एक शब्द है : डा. रमेशकुंतल मेघ : पृ. 509 ।

[47] रुकोगी नहीं राधिका : पृ. 33 ।

[48] द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यासों में रूढ़िमुक्त नारी : डा. राजरानी शर्मा : पृ. 195-259 ।

===== XXXXXX =======